THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_176347
UNIVERSAL
LIBRARY

राजस्व

राजस्व

श्री भगवानदास केला

१९३७

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्त प्रांत, इलाहाबाद

प्रकाशक
हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्त प्रांत, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

मूल्य १।

मुद्रक
नारायण प्रसाद,
नारायण प्रेस, इलाहाबाद

निवेदन



राज्य का प्रायः प्रत्येक नागरिक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राज-कोष में कुछ द्रव्य देता है। असभ्यता की अवस्था में, अथवा स्वेच्छाचारी शासन में राज्य जब-जब और जितना चाहता है प्रजा से धन वसूल करता है, और उसे खर्च करने में भी प्रजा के हिताहित का सम्यग् ध्यान नहीं रखता। उस दशा में नागरिकों को बहुधा यह जानने का ही अवसर नहीं मिलता कि करों आदि से राज्य कितना रुपया ले रहा है, और उसका कितना-कितना भाग किस-किस कार्य में खर्च करता है। इस समय राजस्व के मोटे-मोटे सिद्धांत स्थिर हो चुके हैं और उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार प्रत्येक राज्य में कर लगाए जाते हैं, तथा उन करों से प्राप्त आय को खर्च किया जाता है। अब किसी भी सभ्य कहे जाने वाले राज्य में सरकारी आय-व्यय गुप्त नहीं रक्खा जाता, हाँ, यदि नागरिक स्वयं ही इस विषय की ओर ध्यान न दें और उपेक्षा भाव रखें, तो बात दूसरी है। उस दशा में वे इस विषय के ज्ञान से वंचित रहेंगे, और साथ ही अपने राज्य के प्रति उस कर्तव्य के पालन करने में भी असमर्थ रहेंगे, जिसका पालन वे इस विषय का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके ही, कर सकते हैं।

अतः अपने राज्य की सेवा और उन्नति में यथाशक्ति भाग लेने की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक नागरिक को यह जानना चाहिए कि कर क्यों लिए जाते हैं, किस मात्रा में लिए जाते हैं, और किस रीति से लिए जाते हैं। तथा उनसे प्राप्त आय किस प्रकार किन-किन कार्यों में खर्च

की जाती है, करों के निर्धारित करने में जनता के प्रतिनिधियों को कहां तक अधिकार है, तथा उनके खर्च पर उनका कहां तक नियंत्रण है। इस छोटी सी पुस्तक के अवलोकन से पाठकों को इस विषय का विचार करने में सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है।

भारतीय पाठकों की सुविधा के लिए हमने इसमें भारतीय राजस्व के ही उदाहरण दिए हैं। यद्यपि भारतवर्ष बहुत निर्धन देश है तथापि यहां के निवासी कुल मिलाकर प्रतिवर्ष लगभग तीन सौ करोड़ रुपए केंद्रीय सरकार तथा प्रांतीय सरकारों को कर, फ़ीस, या महसूल आदि के रूप में देते हैं। यहां पर रेल, डाक, तार या नहर आदि से जो कुछ आय होती है, उसमें से इन कार्यों के प्रबंध और संचालन आदि में खर्च होनेवाली रक़म निकाल कर विशुद्ध आय ही हिसाब में दिखाई जाती है। इसी प्रकार इन मदों के व्यय में, मूलधन तथा विविध कर्मचारियों के वेतन आदि का ख़र्च न दिखा कर केवल इनमें लगी हुई पूँजी का सूद ही दिखाया जाता है। हिसाब की इस पद्धति से वार्षिक सरकारी आय-व्यय दो-दो अरब रुपए के लगभग रह जाता है। यह अंक भी काफ़ी बड़े हैं। इनसे पाठकों को इस देश के राजस्व अर्थात् सरकारी आय-व्यय के महत्त्व का अनुमान सहज ही हो सकता है। इस महत्त्व के कारण ही, हम अपनी 'भारतीय शासन' पुस्तक में उसके प्रथम संस्करण के समय (सन् १९१५ ई०) से ही इस विषय का समावेश करते आ रहे हैं। परंतु ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय का समुचित विवेचन उसके एक परिच्छेद में नहीं हो सकता। इस विचार से सन् १९२३ ई० में हमने 'भारतीय राजस्व' नामक पुस्तक पाठकों की भेंट की। उसका साधारणतः अच्छा स्वागत हुआ, कई शिक्षासंस्थाओं में वह पाठ्य-पुस्तक के रूप में काम में लाई गई, संयुक्त-प्रांत के सार्वजनिक पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत होकर वह बहुत से ज़िला-बोर्डों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा मँगाई गई।

इस पुस्तक में सिद्धांत को विशेष स्थान दिया गया है, और नित्य प्रति बदलते रहनेवाले अंकों का केवल उतना ही उल्लेख किया है, जितना विषय को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है। पुस्तक के अंत में पारिभाषिक शब्द दे दिए गए हैं। आशा है कि पाठक इस पुस्तक का वैसा ही स्वागत करेंगे, जैसा कि वे राजनीति और अर्थशास्त्र संबंधी मेरी अन्य विविध कृतियों का करते रहे हैं। इस पुस्तक की रचना में मुझे अपने सुहृद् प्रोफेसर दयाशंकर जी दुबे से विचार-विनिमय की बहु-मूल्य सहायता मिली है, तदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

भारतीय ग्रंथमाला
वृंदावन

विनीत
भगवान दास केला

विषय सूची

प्रथम परिच्छेद

विषय-प्रवेश

प्राक्कथन—राजस्व का अर्थ राज-धन या राज्य का आय-व्यय है। कुछ लेखक राजस्व से विशेषतया आय का ही अभिप्राय लेते हैं। परंतु हम इस के विवेचन में आय और व्यय दोनों का ही विचार आवश्यक समझने वाले ग्रंथकारों से सहमत हैं। राजस्व विषय का विचार करते समय हम पहले ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि देश में समाज संगठित है और वहाँ शासन-प्रबंध की व्यवस्था है।

राज्य-प्रबंध की व्यवस्था—यदि देश में उचित राज्य-प्रबंध न हो, हर समय चोर, डाकुओं, छली, कपटियों तथा बलवानों के अत्याचारों का भय हो, तो धन की रक्षा का विश्वास न होने से धन बहुत कम उत्पन्न किया जा सकेगा, और जो कुछ उत्पन्न भी होगा, उसे शीघ्र खर्च कर डालने तथा छिपा कर रखने की प्रवृत्ति होगी। बचत को धन की उत्पत्ति के काम में नहीं लगाया जायगा। इस प्रकार मूल-धन अर्थात पूँजी का हर दम दिवाला निकला रहेगा। इस लिए आर्थिक दृष्टि से देश में राज्य-प्रबंध की बड़ी आवश्यकता है।

राज्य के कार्य; देश-रक्षा—राज्य का मुख्य कार्य देश के बाहरी शत्रुओं को हटाना, और देश में शांति और सुप्रबंध रखते हुए जनता की सुख-समृद्धि में सहायक होना है। इस के लिए राज्य को फ़ौज पुलिस तथा अन्य कर्मचारी रखने होते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि राज्य ५ की रक्षा के लिए ही फ़ौज नहीं रखता, वरन् संसा

के अन्य देशों में अपनी मान-मर्यादा की वृद्धि के लिए भी रखता है। खेद है कि यह प्रवृत्ति बढ़ती ही जाती है।

प्राचीन काल में कुछ 'धर्म-प्रेमी' देशों ने तलवार के बल से 'धर्म' का प्रचार किया था। अब प्रबल राष्ट्र इस बात का उद्योग कर रहे हैं कि उन्नति-काल के भयंकर शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो दूसरे देशों में अपनी 'सभ्यता' का प्रचार करें, अथवा उन्हें अपने व्यापार के लिए प्रभाव-क्षेत्र बनावें। निदान, बहुत कम देशों का, और बहुत थोड़ा धन आत्म-रक्षा में व्यय होता है। अधिकांश देशों का, और अधिकांश धन दूसरों को परतंत्रता के पाश में जकड़ने के लिए ख़र्च किया जा रहा है। विशेष दुख की बात तो यह है कि वर्तमान नीति का यह एक सिद्धांत-सा ही हो चला है कि शांति चाहते हो तो युद्ध के लिए तैयार रहो। इस प्रकार शांति की आड़ में युद्ध की तैयारी करना एक साधारण बात है। प्रत्येक देश अपने पड़ोसी से भयभीत हो कर उस से अधिक सुदृढ़ सेना रखना चाहता है, तो हर एक का सैनिक व्यय बराबर बढ़ने वाला ही ठहरा। अब यह निश्चय करना ही कठिन हो जाता है कि आत्म-रक्षा के लिए कितना व्यय करना उचित है, और किस मात्रा से अधिक होने पर उसे अनुचित कहना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिषद् ने किसी देश की कुल आय का अधिक से अधिक बीस फ़ी सदी सेना में व्यय करना उचित ठहराया है, परंतु इस पर शांति से विचार ही कौन करता है? विदेशी सरकारें तो अपने अधीन देशों के दरिद्र होते हुए भी उन की केंद्रीय और प्रांतीय आय के योग का पच्चीस, तीस, या पैंतीस फ़ी सदी भाग तक सेना में ख़र्च कर डालती हैं। पुलिस का ख़र्च अलग रहा।

शांति और सुव्यवस्था—बाहरी आक्रमण से रक्षा करने के अतिरिक्त सरकार का कार्य देश के भीतर शांति और सुव्यवस्था रखना है। नागरिकों के पारस्परिक व्यवहार आदि के भिन्न-भिन्न विषयों के

क़ानून बनाए जाते हैं, और, नागरिक इन क़ानूनों पर अमल करें, इस बात की व्यवस्था की जाती है। जो व्यक्ति क़ानूनों को भंग करते हैं उन की गिरफ़्तारी के लिए पुलिस का, तथा उन के संबंध में विचार करने के लिए न्यायालयों का, तथा उन्हें दंड देने के लिए जेलों का प्रबंध किया जाता है।

जन-हितकारी कार्य—नागरिकों की नैतिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उन का अज्ञानांधकार दूर किया जाय, उन्हें तरह-तरह की शिक्षा दी जाय, उन के स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के लिए विविध आयोजन किए जायें। उन्हें खेती तथा उद्योग-धंधों की विविध सुविधाएं दी जायें। उन के क्रय-विक्रय आदि के लिए मुद्रा और टकसाल आदि की भी व्यवस्था होनी आवश्यक है। सरकार के इन कार्यों में जन-हितकारिता का विचार मुख्य रहता है। इस प्रकार के कुछ अन्य कार्य भूगर्भ, वनस्पति, जीव-विद्या, मनुष्य-गणना, अकाल-रक्षा हैं। इस के अतिरिक्त कहीं-कहीं राज्य बेकार और बीमार नागरिकों की आर्थिक सहायता का प्रबन्ध करता है, तथा बुढ़ापे की पेन्शन की भी व्यवस्था करता है।

व्यवसायिक कार्य—सरकार जनता के लिए बड़ी-बड़ी पूंजी लगा कर कुछ ऐसे कार्य भी करती है, जिन्हें नागरिकों को अलग-अलग करने की सुविधा नहीं होती। इन कार्यों का संचालन इस प्रकार किया जाता है कि इन का ख़र्च उन से ही निकल आए और थोड़ा-बहुत लाभ हो तो वह अन्य कार्यों में लगाया जा सके। उदाहरणार्थ देश में रेल, डाक, तार का प्रबंध करना, आबपाशी के लिए नहरें निकालना, जंगलों, खानों आदि की रक्षा और सम्यक् उपयोग करना आदि।

भारतवर्ष में राज्य के कार्य—देश-रक्षा तथा शांति और सुव्यवस्था के अतिरिक्त, राज्य के अन्य कार्य भिन्न-भिन्न देशों की

परिस्थिति या आवश्यकतानुसार पृथक्-पृथक् होते हैं। तथापि इस में संदेह नहीं कि आधुनिक सभ्यता में राज्य के कार्य अधिकाधिक बढ़ते ही जा रहे हैं। रेल, तार, डाक, आदि पारस्परिक व्यवहार के नए साधन अब बहुत से देशों में राज्य के अधीन हैं। भारतवर्ष में तो इन कामों के अतिरिक्त जंगल, और नहर का प्रबंध भी राज्य ही करता है, वही अफ़ीम आदि मादक पदार्थों तथा नमक की उत्पत्ति का नियंत्रण करता है, और इन की बिक्री के लिए ठेका देता है; एक बड़े ज़मीदार की तरह यहाँ मालगुज़ारी वसूल करता है, और वही शिक्षा, स्वास्थ्य, और न्याय आदि विभागों का प्रबंध करता है। इस से अनुमान किया जा सकता है कि राज्य की शक्ति हमारे आंतरिक जीवन पर कितना प्रभुत्व रखती है, और हम राज्य के कितने अधीन हैं।

राजस्व-शास्त्र—राजस्व-शास्त्र में सरकार के आय-व्यय तथा उस से संबंध रखनेवाली बातों पर शास्त्रीय-दृष्टि से विचार किया जाता है। सरकार से यहाँ मतलब केंद्रीय तथा प्रांतीय सरकारों से ही नहीं, म्युनिसिपैलिटियों, ज़िला-बोर्डों और पोर्ट-ट्रस्टों आदि स्थानीय संस्थाओं से भी है। अतः राजस्व-शास्त्र में उक्त सब संस्थाओं के आय-व्यय का विवेचन होता है। आज-कल राजस्व का विषय बहुत महत्त्व-पूर्ण हो गया है। समय-समय पर विविध विचारकों ने इस के संबंध में भाँति-भाँति के विचार तथा तर्क-वितर्क उपस्थित किए हैं, यद्यपि अभी तक भी कुछ ब्यौरेवार तथा सूक्ष्म बातों में मत-भेद पाया जाता है, पर मुख्य-मुख्य बातों में एक सर्व-सम्मत स्वरूप प्राप्त कर लिया गया है, और इस विषय का एक स्वतंत्र शास्त्र हो गया है।

राजस्व-शास्त्र के भाग—इस शास्त्र के चार भाग होते हैं:—

१—राज्य का व्यय

२—राज्य की आय

३—राज्य का ऋण

४—राजस्व-व्यवस्था

इन में से प्रथम भाग में उन नियमों या क़ानूनों का विचार किया जाता है, जिन के अनुसार सरकार द्वारा होने वाले कार्यों पर ख़र्च की जाने वाली भिन्न-भिन्न मदों की रक़मों के परिमाण का निश्चय किया जाता है।

दूसरे भाग में उन बातों का विचार किया जाता है, जिन के अनुसार सरकार अपने लिए आवश्यक ख़र्च की रक़म जनता से प्राप्त करती है। इस में करों का स्वरूप आदि भी सम्मिलित है।

तीसरे भाग में इस बात का विचार होता है कि जब राज्य का कार्य अपनी आय से न हो सके, तथा उसे और रुपयों की आवश्यकता हो तो उसे किस प्रकार किन नियमों को ध्यान में रखते हुए ऋण को चुकाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

चौथे भाग में इस बात का विचार होता है कि आय-व्यय का अनुमान-पत्र किस प्रकार तैयार किया जाता है, किस प्रकार वह जनता के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकार किया जाता है, तथा आय-व्यय का हिसाब किस प्रकार रक्खा जाता है। स्मरण रहे कि आज-कल सरकारों का व्यय तथा आय प्रायः नक़द रुपए में होती है, जिन्स में अर्थात् अन्य पदार्थों में नहीं होती।

यद्यपि राजस्व के संबंध में उस की व्यवस्था का विचार सब से पीछे आता है तथापि सुविधा की दृष्टि से हम उस का विचार सब से प्रथम अगले परिच्छेद में ही करेंगे।

दूसरा परिच्छेद

राजस्व-व्यवस्था

राजस्व-व्यवस्था-संबंधी सिद्धांतों को समझने के लिए किसी देश विशेष में उन सिद्धांतों के व्यवहार के उदाहरणों पर भी साथ साथ विचार करना उपयोगी होता है। भारतीय पाठकों के लिए भारतीय राजस्व-व्यवस्था जानना विशेष रुचिकर होगा, अतः इस परिच्छेद में इसी देश की राज्य-व्यवस्था को लक्ष्य में रख कर विचार किया जात है।

आयव्यय-अनुमानपत्र—राज्य-व्यवस्था-संबंधी एक मुख्य ज्ञातव्य विषय आयव्यय-अनुमानपत्र है। यह वह नक़्शा होता है, जिस में आगामी वर्ष की अनुमानित आय और व्यय ब्यौरेवार लिखी जाती है। इस के अतिरिक्त, इस में गतवर्ष की आय और व्यय के वास्तविक अंक दिए जाते हैं, और प्रचलित वर्ष की आय-व्यय के नौ-दस महीने के वास्तविक, और शेष दो तीन महीनों के अनुमानित अंक दिए जाते हैं। यह इस लिए किया जाता है कि तुलना करने में सुविधा हो। सरकारी हिसाब के लिए किसी वर्ष की पहली अप्रेल से अगले वर्ष की इकतीस मार्च तक एक साल समझा जाता है।

आयव्यय-अनुमानपत्र के विषय—सन् १९१९ ई० के शासन-सुधारों के बाद से प्रांतीय सरकारों के आय-व्यय के अंक केंद्रीय सरकार के बजट में नहीं रक्खे जाते। प्रत्येक प्रांत अपने आय-व्यय का अनुमान पत्र अलग-अलग बनाता है। इस प्रकार समस्त ब्रिटिश भारत के लिए एक बजट न हो कर कई बजट होते हैं।

केंद्रीय सरकार के आयव्यय-अनुमानपत्र में निम्नलिखित बातें रहती हैं:—

१—सिविल विभागों का आयव्यय-अनुमान; तथा चीफ़ कमिश्नरों के प्रांतों का आयव्यय-अनुमान (ये प्रांत केंद्रीय सरकार द्वारा ही शासित होते हैं।)

२—उन विभागों के आयव्यय का अनुमान, जो समस्त देश के लिए आवश्यक हैं, यथा, फ़ौज, रेल, डाक, तार।

३—इंडया आफ़िस के आयव्यय का अनुमान।

४—भारतवर्ष के हाई कमिश्नर संबंधी आयव्यय का अनुमान।

आयव्यय-अनुमानपत्र किस प्रकार तैयार किया जाता है?—प्राय: अगस्त या सितंबर के महीने में प्रत्येक प्रांत में भिन्न-भिन्न विभागों के मुख्य अधिकारी अगले वर्ष की आय और व्यय का अनुमान प्रांतीय सरकार के पास भेज देते हैं। ख़र्च को दो भागों में बाँट कर दिखाया जाता है:—

१—जो ख़र्च साधारणतया सदैव होता रहता है, और सरकार द्वारा स्वीकृत हो चुका है, जैसे सरकारी कर्मचारियों का वेतन।

२—जो खर्च नया होता है, अर्थात् उस वर्ष विशेष करना होता है। भिन्न-भिन्न विभागों से प्राप्त हुए नक्शों को एकत्रित कर के प्रांतीय सरकार के संबंधित सदस्य सरकार द्वारा स्वीकृत ख़र्च का एक नक़्शा बना देते हैं। पश्चात्, अर्थ-सदस्य इन सब नक़्शों की अच्छी तरह जाँच कर के इन सब का एक नक़्शा बनाता है। नए खर्च की जो रक़में होती हैं, वे विचारार्थ अर्थ-समिति में पेश की जाती हैं, जिस में अर्थ-सदस्य के अतिरिक्त व्यवस्थापक-मंडल के कुछ निर्वाचित सदस्य होते हैं। जब यह समिति इन ख़र्चों को स्वीकार कर लेती है तो इन के अंक आयव्यय अनुमान-

पत्र की संशोधित प्रति में सम्मिलित किए जाने के लिए एकौंटैंट-जनरल के पास भेजे जाते हैं।

यही कार्य-पद्धति केंद्रीय सरकार के आयव्यय-अनुमानपत्र की तैयारी में भी व्यवहृत होती है। प्रांतीय सरकारों तथा केंद्रीय सरकार का बजट-संबंधी यह कार्य लगभग दिसंबर के अंत में हो जाता है।

अब बजट सरकार के सामने पेश होता है। अगर आय कम हो तो कर बढ़ाने के नए उपाय सोचे जाते हैं। इन उपायों को बिल्कुल गुप्त रक्खा जाता है। विचार होने के बाद बजट की नई संशोधित प्रति लगभग फ़रवरी के आरंभ में तैयार हो जाती है। तदनंर बजट व्यवस्थापक-मंडल में पेश होता है। इस में नए और पुराने सब कर रहते हैं। अर्थ-सदस्य भाषण दे कर तमाम बजट को समझाता है, और आवश्यकतानुसार नए करों को लगाने तथा पुराने करों को हटाने का औचित्य भो बतलाता है।

केंद्रीय बजट, केंद्रीय व्यवस्थापक-मंडल में, तथा प्रांतीय बजट संबंधित प्रांत के व्यवस्थापक-मंडल में फ़रवरी के अंतिम या मार्च के प्रथम सप्ताह में उपस्थित किए जाते हैं। केंद्रीय सरकार का रेलवे बजट लगभग २० फ़रवरी को पेश किया जाता है। केंद्रीय बजट की मदों में गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश बिना रुपया लगाने का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता।

भारतीय व्यवस्थापक-मंडल—भारतीय राजस्व-संबंधी सुधारों के विवेचन में यह भी जान लेना आवश्यक है कि भारतीय और प्रांतीय व्यवस्थापक-मंडलों का संगठन किस प्रकार है। इस विषय का सविस्तर वर्णन लेखक की 'भारतीय शासन'-नामक पुस्तक में किया गया है संक्षेप में यह कहना पर्याप्त होगा कि गवर्नर-जनरल के अतिरिक्त, भारतीय व्यवस्थापक-मंडल में दो भाग हैं—

१—राज्य-परिषद्, अर्थात् कौंसिल आव् स्टेट।

२—भारतीय व्यवस्थापक-सभा, अर्थात् लेजिस्लेटिव ऐसेंबली।

राज्य-परिषद् में ६० सदस्य होते हैं, जिन में ३३ निर्वाचित और २७ नामज़द होते हैं। व्यवस्थापक-सभा में सदस्यों की संख्या १४० निश्चित की गई है, जिन में ४० नामज़द होने चाहिए। इस समय इस सभा में १०३ निर्वाचित और ४१ नामज़द, कुल १४४ सदस्य हैं। सिवाय कुछ ख़ास हालतों के, कोई क़ानून अब पास हुआ नहीं समझा जाता, जब तक दोनों सभाएँ उसे मूल-रूप में अथवा कुछ संशोधनों सहित स्वीकार न कर लें।

सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार, संघ का निर्माण हो जाने पर भारतवर्ष के केंद्रीय क़ानून बनानेवाली संस्था का नाम संघीय व्यवस्थापक मंडल (फ़ीडरल लेजिस्लेचर) होगा। उस में दो सभाएँ होंगी—राज्य-परिषद् और संघीय व्यवस्थापक-सभा (फ़ीडरल एसेंबली)। राज्य परिषद् में २६० सदस्य होंगे:—१५६ ब्रिटिश भारत के, और १०४ देशी राज्यों के। यह एक स्थायी संस्था होगी। इस के एक तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष चुने जाया करेंगे। ब्रिटिश भारत के सदस्यों में से १५० जनता द्वारा निर्वाचित, और ६ नामज़द होंगे। संघीय व्यवस्थापक-सभा में ३७५ सदस्य होंगे—२५० ब्रिटिश भारत के, और १२५ देशी राज्यों के। ब्रिटिश भारत के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से होगा—वह प्रांतों की व्यवस्थापक-सभाओं (एसेंबलियों) के सदस्यों द्वारा प्रति पाँचवें वर्ष होगा। दोनों सभाओं अर्थात् राज्य-परिषद् और संघीय व्यवस्थापक-सभा में देशी राज्यों की ओर से लिए जानेवाले सदस्य जनता से निर्वाचित न हो कर नरेशों द्वारा नियुक्त हुआ करेंगे।

प्रांतीय व्यवस्थापक-मंडल—सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार अब ११ प्रांतों में व्यवस्थापक-सभाएँ हैं। इन में यद्यपि नाम-

ज़द सदस्य नहीं होते, तथापि सांप्रदायिकता के आधार पर चुने हुए सदस्य पर्याप्त सख्या में रहते हैं। भिन्न-भिन्न प्रांतों की व्यवस्थापक-सभाओं में कुल सदस्यों की संख्या इस प्रकार है :—

मदरास २१५; बंबई १७५; बगाल २५०; संयुक्तप्रांत २२८; पंजाब १७५; बिहार १५२; मध्यप्रांत बरार ११२; आसाम १०८; पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत ५०; उड़ीसा ६०; सिंध ६० ।

भारतवर्ष में संयुक्त-निर्वाचन प्रथा न हो कर पृथक्-निर्वाचन-पद्धति प्रचलित है। उस के अनुसार यहाँ १५ प्रकार के निर्वाचक-संघ हैं—

साधारण; सिख; मुसलिम; ऐंग्लो इंडियन; यूरोपियन; भारतीय ईसाई; व्यापार, उद्योग, और खनिज; ज़मीदार; विश्वविद्यालय; श्रम; स्त्रियाँ (साधारण); स्त्रियाँ (सिख); स्त्रियाँ (मुसल्मान); स्त्रियाँ (ऐंग्लो-इंडियन); स्त्रियाँ (भारतीय ईसाई) ।

पहले सब गवर्नरों के प्रांतों में एक-एक ही व्यवस्थापक-सभा थी। अब सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार ६ प्रांतों में दूसरी सभा अर्थात् व्यवस्थापक-परिषदें हैं। इन के कुल, अधिक से अधिक, सदस्यों की संख्या इस प्रकार है—

मदरास ५६; बंबई ३०; बंगाल ६५; संयुक्तप्रांत ६०; बिहार ३० आसाम २२ ।

ये परिषदें स्थायी संस्थाएँ हैं, प्रथम संगठन के बाद किसी भी सम इन के नए सदस्यों की संख्या एक-तिहाई से अधिक नहीं होती। प्रत्ये परिषद् में कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा नामज़द होते हैं। बंगाल औ बिहार की व्यवस्थापक-परिषदों में क्रमशः २७ और १२ सदस्य इ प्रांतों की व्यवस्थापक-सभाओं द्वारा—अप्रत्यक्ष-रीति से चुने हुए होते हैं

भारतीय व्यवस्थापक-सभा में व्यय की स्वीकृति—बजट नियम

नुसार पेश किए जाने के दिन, उस की प्रति व्यवस्था-मंडल के प्रत्येक सदस्य की मेज़ पर रख दी जाती है। सदस्य भिन्न-भिन्न ख़र्चों का विचार करते हैं। यदि उन्हें किसी मद के ख़र्च में कुछ कमी की सूचना देनी हो तो वे उस सूचना को सेक्रेटरी के पास भेज देते हैं। बजट काफ़ी बड़ा होता है, वह सभा में पढ़ा नहीं जाता। उसे उपस्थित करते समय अर्थ-मंत्री उस के संबंध में भाषण करता है। वह नई रक़मों को समझाता है। दो-तीन दिन के बाद बजट पर साधारण बहस शुरू होती है। इन दिनों में सदस्य बजट के समष्टि-रूप पर अपनी सम्मति दे देते हैं। अंत में अर्थ-सदस्य आलोचनाओं का जवाब दे कर बहस समाप्त करता है। इस से उसे व्यवस्थापक-मंडल का रुख़ मालूम हो जाता है। अब बजट पर मत देने की बात आती है। कई विषय ऐसे होते हैं, जिन पर मत लिए जाने का नियम नहीं है। शेष विषयों पर प्रायः एक सप्ताह तक मत लिए जाते हैं।

निम्नलिखित विभागों में रुपया लगाने के विषय में कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के प्रस्ताव व्यवस्थापक-सभा के वोट (मत) के लिए नहीं रक्खे जाते, न कोई सभा उन पर वाद-विवाद कर सकती है, जब तक गवर्नर-जनरल इस के लिए आज्ञा न दे दे:—

१—ऋण का सूद।

२—ऐसा ख़र्च, जिस की रक़म कानून से निर्धारित हो।

३—उन लोगों की पेंशन या तनख़्वाहें, जो सम्राट् या भारत-मंत्री द्वारा, या सम्राट् की स्वीकृत से नियुक्त किए गए हों। चीफ़ कमिश्नरों या जुडिशल कमिश्नरों का वेतन।

४—वह रक़म जो सम्राट् को देशी राज्यों संबंधी कार्य के ख़र्च के उपलक्ष्य में दी जाती हो।

५—किसी प्रांत के पृथक् किए हुए (एक्सक्लयूडेड) क्षेत्रों की शासन-संबंधी सहायता।[1]

६—ऐसी रक़म जो गवर्नर-जनरल उन कार्यों में खर्च करे, जिन्हें उस को अपनी मर्ज़ी से करना आवश्यक हो।

७—वह खर्च जिसे कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल ने (क) धार्मिक (ख) राजनैतिक या (ग) रक्षा (सेना-संबंधी) ठहराया हो।

इन मद्दों को छोड़ कर व्यय के अन्य विषयों के खर्च के लिए कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के अन्य प्रस्ताव संबंधित सरकारी सदस्य द्वारा भारतीय व्यवस्थापक-सभा के मत के वास्ते, माँग के स्वरूप में, रक्खे जाते हैं। उस के सदस्यों को अधिकार है कि वह किसी माँग को घटाने का प्रस्ताव करें। कोई सदस्य किसी मद्द के खर्च को बढ़ाने का प्रस्ताव नहीं कर सकता, क्योंकि खर्च करने वाले अधिकारी ही इस बात का अच्छी तरह निर्णय कर सकते हैं कि किसी मद्द में अधिक से अधिक कितना खर्च किया जाना उचित है। जब किसी मद्द में केवल एक रुपया कम करने का प्रस्ताव किया जाता है तो इसे सांकेतिक कमी (टोकेन कट) कहते हैं। इस का अभिप्रायः उस विभाग की कार्य-प्रणाली के संबंध में निंदात्मक प्रस्ताव करना होता है, अथवा यह भी हो सकता है कि उस मद्द में खर्च बहुत कम है।

बजट अधिवेशन में पहले किसी विभाग की आलोचना या निंदा करने के उद्देश्य से प्रस्तुत की हुई सांकेतिक कटौतियों पर विचार होता है। पश्चात् अन्य कटौतियों का विचार हो कर एक-एक मद्द के खर्च की मांग की जाती है। बजट की बहस के लिए निश्चित किए हुए सप्ताह के अंतिम दिन के पाँच बजे, कटौतियों की समाप्ति (गिलोटिन) हो जाती

---

[1] पृथक् क्षेत्रों के संबंध में आगे, प्रांतीय मद्दों के प्रसंग में लिखा गया है।

है। इस के बाद किसी कटौती पर बहस नहीं होती। सदस्य के आग्रह पर कटौती की रक़म पर मत लिए जाते हैं, और यदि वह स्वीकार हो जाय तो उस मद की रक़म को उस में आवश्यक कमी कर के मंज़ूर किया जाता है। इस प्रकार सारा शेष कार्य थोड़ी देर में ही निपटा लेने का नियम है। इस लिए मदों का क्रम निश्चय करने में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि ख़ास-ख़ास विषयों का विचार आरंभ में ही हो सके।

बजट राज्य-परिषद् में ही पेश होता है, पर उसे घटाने या किसी माँग को अस्वीकार करने आदि का अधिकार केवल भारतीय व्यवस्थापक-सभा को है। राज्य-परिषद् अपने प्रस्ताव आदि से, सरकार की आर्थिक नीति या साधनों की आलोचना कर सकती है।

प्रांतीय व्यवस्थापक-मंडलों में व्यय की स्वीकृति—प्रांतीय बजट-संबंधी कार्य-पद्धति उसी प्रकार की है, जैसे केंद्रीय बजट की। उस की मत दी जानेवाली और मत न दी जानेवाली मदों में, केंद्रीय बजट की उपर्युक्त मदों से अंतर रहता है। प्रांतीय बजट का प्रश्न केवल गवर्नरों के प्रांतों में ही रहता है (अन्य अर्थात् चीफ़ कमिश्नरों के प्रांतों संबंधी ख़र्च तथा आय का केंद्रीय बजट में समावेश हो जाता है।) किसी प्रांत का बजट वहाँ की प्रांतीय व्यावस्थापक-सभा में (और जिस प्रांत में व्यावस्थापक-परिषद् हो, उस प्रांत में व्यवस्थापक-परिषद् में भी) उपस्थित किया जाता है। बजट में दो प्रकार की मदों की रक़में पृथक्-पृथक् दिखाई जाती हैं—

(१) जिन पर प्रांतीय व्यवस्थापक-सभा का मत लिया जाता है और
(२) जिन पर मत नहीं लिया जाता।

व्यय की निम्नलिखित मदों पर प्रांतीय व्यावस्थापक-सभा को मत देने का अधिकार नहीं है:—

(क) गवर्नर का वेतन और भत्ता, तथा उस के कार्यालय संबंधी निर्धारित व्यय ।

(ख) प्रांतीय ऋण-संबंधी व्यय, सूद आदि ।

(ग) मंत्रियों और ऐडवोकेट-जनरल का वेतन और भत्ता ।

(घ) हाई कोर्ट के जजों का वेतन और भत्ता ।

(च) पृथक् क्षेत्रों के शासन-संबंधी व्यय ।

(छ) अदालती निर्णयों के अनुसार होने वाला व्यय ।

(ज) अन्य व्यय जो नवीन शासन-विधान या किसी प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो । [इस के अंतर्गत उन सब कर्मचारियों के वेतन और भत्ते भी सम्मिलित हैं, जो भारत-मंत्री द्वारा नियुक्त होते हैं, जैसे इंडियन सिविल सर्विस, या इंडियन पुलिस सर्विस आदि के कर्मचारी ।]

कोई प्रस्तावित व्यय उक्त मदों में से किसी में आता है या नहीं, इस का निर्णय गवर्नर अपनी मर्ज़ी से करता है । (क) को छोड़ कर शेष मदों पर व्यवस्थापक-मंडल में वादानुवाद हो सकता है । उपर्युक्त (क) से (ज) तक की मदों को छोड़ कर अन्य मदों के ख़र्च के प्रस्ताव व्यवस्थापक-सभा के सदस्यों के मत के लिए माँग के रूप में रक्खे जाते हैं । इस पर उसी प्रकार की कार्यवाही होती है जैसी केंद्रीय बजट के संबंध में पहले बता आए हैं ।

आय-संबंधी प्रस्तावों पर विचार—कर-संबंधी बातें प्रस्तावों के रूप में तैयार की जाती हैं । इसे कर-संबंधी प्रस्तावपत्र (फ़ाइनैंस बिल) कहते हैं । निम्नलिखित प्रकार के संशोधन का प्रस्ताव केंद्र में गवर्नर-जनरल और प्रांतों में गवर्नर की सिफ़ारिश के बिना नहीं किया जाता और वह व्यवस्थापक-परिषद् में नहीं रक्खा जाता—

(क) जिस में कर लगाने या बढ़ाने की व्यवस्था हो।

(ख) जिस में सरकार द्वारा रुपया उधार लेने की व्यवस्था हो।

केंद्रीय कर-संबंधी प्रस्ताव-पत्र स्वीकार करने के लिए निम्नलिखित कार्यवाही की जाती है। पहले इसे उपस्थित करने के लिए भारतीय व्यवस्थापक सभा की अनुमति ली जाती है। यदि भारतीय व्यवस्थापक सभा इसे इस पहली मंज़िल में ही रद्द कर दे तो गवर्नर-जनरल यह तसदीक़ करता है कि देश की शांति और सुव्यवस्था के लिए इस का उपस्थित किया जाना आवश्यक है। पहले कहा जा चुका है कि राज्य-परिषद् को ख़र्च-संबंधी माँगों पर मत देने का अधिकार नहीं; परंतु उसे कर-संबंधी प्रस्ताव पर मत देने का अधिकार प्राप्त है। जब भारतीय व्यवस्थापक-सभा इस प्रस्ताव को पहली मंज़िल में ही रद्द कर देती है तो राज्य-परिषद् से इसे उपस्थित किए जाने की अनुमति माँगी जाती है; वह तो दे ही देती है।

कर-संबंधी प्रस्ताव-पत्र को उपस्थित किए जाने की अनुमति मिल जाने के बाद वह भारतीय व्यवस्थापक-सभा में पेश होता है और उस की एक-एक धारा या अंश पर बहस होती है और उसे पृथक्-पृथक् स्वीकार किया जाता है। कोई सदस्य वृद्धि का प्रस्ताव नहीं कर सकता; हाँ, वह उसे घटाने का प्रस्ताव कर सकता है। जब उक्त प्रस्ताव के विविध अंशों पर विचार तथा संशोधन आदि हो चुकता है तो इकट्ठे पूर्ण प्रस्ताव को स्वीकार किया जाता है। भारतीय व्यवस्थापक-सभा में स्वीकार किए जाने के बाद संशोधित कर-संबंधी प्रस्ताव-पत्र को राज्य-परिषद् में भेजा जाता है, वहाँ उस पर उसी प्रकार की कार्यवाही होती है जैसी भारतीय व्यवस्थापक सभा में। संशोधित प्रस्ताव-पत्र पर मत लिए जा कर उसे स्वीकार किया जाता है। फिर यह गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। उस की स्वीकृति मिल जाने पर वह क़ानून बन

जाता है और उस के अनुसार कर वसूल किए जाते हैं।

तत्पश्चात् यदि वर्ष के अंतर्गत सरकार को यह ज्ञात हो कि उक्त करों से उस का ख़र्च नहीं चल सकता तो वह कर-संबंधी पूरक प्रस्ताव सितबंर या अक्तूबर में उपस्थित कर सकती है।

किसी प्रांत के कर-संबंधी प्रस्ताव-पत्र के विषय में उस प्रांत के गवर्नर को वैसा ही अधिकार है जैसा केंद्र में गवर्नर-जनरल को।

गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के अधिकार—भारतवर्ष में केंद्रीय बजट के संबंध में गवर्नर-जनरल को तथा प्रांतीय बजटों के संबंध में गवर्नरों को बहुत अधिकार प्राप्त हैं। प्रथम तो उन की सिफ़ारिश के बिना, क्रमशः केंद्र में, तथा प्रांतों में किसी काम के लिए रुपए की माँग का प्रस्ताव ही नहीं किया जा सकता। पुनः यदि भारतीय व्यवस्थापक सभा किसी की माँग स्वीकार न करे या घटा कर स्वीकार करे और इस से गवर्नर-जनरल की सम्मति में उस के उत्तरदायित्व को पूरा करने में बाधा उपस्थित हो या उक्त ख़र्च देश की शांति और सुव्यवस्था के लिए आवश्यक हो तो वह अपने विशेषाधिकार से रद्द की हुई या घटाई हुई माँग की पूर्त्ति कर सकता है। इसी प्रकार का अधिकार प्रांतों में गवर्नरों को है। यह तो व्यय-संबधी बात हुई। आय के विषय में भी ऐसी ही व्यवस्था है। भारतीय व्यवस्थापक-सभा या प्रांतीय व्यवस्थापक सभा में कर लगाने या बढ़ाने का कोई प्रस्ताव या संशोधन क्रमशः गवर्नर-जनरल और गवर्नर की सिफ़ारिश बिना उपस्थित नहीं किया जा सकता। और उक्त सभाओं में कर-संबंधी कोई प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर भी उक्त अधिकारी आवश्यक समझे तो उसे अपने विशेषाधिकार से स्वीकार कर सकते हैं।

व्यय तथा आय के संबंध में, गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के इन अधिकारों के होते हुए, वास्तव में भारतीय व्यवस्थापक-मंडल तथा

प्रांतीय व्यवस्थापक-मंडलों का विशेष महत्व नहीं रहता।

आयव्यय-संबंधी कार्य यथा-समय समाप्त करने के संबंध में भारतीय व्यवस्थापक-सभा के नियम गवर्नर-जनरल, इस सभा के सभापति के परामर्श से, और राज्य-परिषद् के नियम उस सभा के सभापति के परामर्श से, बनाता है। इसी प्रकार प्रांतीय व्यवस्थापक-सभा और व्यवस्थापक-परिषद् के नियम गवर्नर बनाता है।

आय के साधनों का केंद्रीय तथा प्रांतीय सरकारों में विभाजन: नवीन विधान से पहले—मांटफ़ोर्ड सुधारों (१९१९ ई०) से पूर्व सरकारी आय के कुछ साधन केंद्रीय, और कुछ प्रांतीय थे, तथा कुछ साधन केंद्रीय और प्रांतीय दोनों सरकारों में विभक्त थे। मांटफ़ोर्ड सुधारों से निश्चय हुआ कि भारत सरकार के संबंध से प्रांतीय सरकारों को, प्रबंध करने में जो व्यय करना पड़ता है, उस का एक पक्का अंदाज़ किया जाय। फिर, जिन मद्दों की आमदनी से यह ख़र्च चल जाय, वे भारत सरकार के अधीन कर दी जाँय। बाक़ी जितनी आमदनी बचे, वह प्रांतीय सरकारों के हाथ में रहे, और प्रांतीय उन्नति का काम बढ़ाने की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं पर रहे। निदान, भारत सरकार और प्रांतीय सरकारों की आय एवं व्यय की मद्दें बिल्कुल पृथक् हों। इस के फल-स्वरूप ज़मीन की आमदनी, आबपाशी की आमदनी, आबकारी, और अदालती स्टांप की आमदनी प्रांतीय की गई। स्टांप से होनेवाली साधारण (व्यापारिक आदि) आमदनी तथा इनकम-टैक्स आदि की आमदनी भारत सरकार की आय रक्खी गई। ऐसी कोई मद्द न रही, जिस में भारत सरकार और किसी प्रांतीय सरकार, दोनों का भाग हो।

आय के सब साधन पृथक्-पृथक् हो जाने पर भारत सरकार के आय-व्यय के अनुमान में आमदनी की कमी होना स्वाभाविक था। इस की पूर्त्ति के लिए यह तजवीज़ की गई कि प्रांतीय सरकारें भारत सरकार को

भिन्न-भिन्न मद्दों का भाग देने के बदले अपनी बढ़ती हुई कुल आय में से एक निर्धारित हिस्सा दें। इस हिस्से की रक़में मेस्टन-कमेटी द्वारा निश्चय की गईं। सन् १९२७ ई० में प्रांतीय सरकारों से केंद्रीय सरकार को उपर्युक्त आय प्राप्त होना बंद हो गया, परंतु फिर भी विभाजन ठीक नहीं रहा; कारण कि प्रांतीय सरकारों की आवश्यकताएँ बहुत थीं और उन की वर्तमान साधनों से होनेवाली आय थी प्रायः परिमित ही। उन्हें अनेक राष्ट्रोपयोगी कार्यों के लिए धनाभाव रहा है। इस के विपरीत केंद्रीय सरकार की आवश्यकताएँ सीमित थीं, परंतु उस की आय के साधन थे वृद्धि-मूलक।

नवीन विधान के अनुसार—सन् १९३५ ई० के विधान से यह व्यवस्था की गई है कि केंद्रीय सरकार की आय के साधन निम्न-लिखित रहें :—आयात-निर्यात-कर, अफ़ीम, पेट्रोलियम, तंबाकू, और अन्य देशी माल पर कर, नमक, आय-कर, डाक, तार, बेतार का तार, ध्वनि-विस्तार (ब्राडकास्टिंग), कारपोरेशन-कर। इन करों को केंद्रीय सरकार लगाएगी, तथा वसूल करेगी।

प्रांतीय सरकारों की आय के वे साधन जिन्हें वे स्वयं वसूल करती हैं, निम्न-लिखित हैं :—भूमि-कर, मालगुज़ारी, कृषि-भूमि पर उत्तराधिकार-कर, विलासिता (जुआ, सट्टा आदि)-कर, आबकारी, अदालतों की फ़ीस, जंगल, आबपाशी, नदियों या नहरों के रास्ते जाने-वाले यात्रियों तथा सामान पर कर। इन के अतिरिक्त प्रांतीय आय के निम्न-लिखित साधन और भी हैं :—कृषि-भूमि को छोड़ कर, अन्य संपत्ति पर उत्तराधिकार-कर, ग़ैर-अदालती स्टांप, रेल या वायुयान से जानेवाले यात्रियों तथा सामान पर टरमिनल टैक्स और रेल के किराये-भाड़े पर कर। इन करों की आय को (चीफ़ कमिश्नरों वाले प्रांतों से मिलनेवाले भाग को छोड़ कर शेष) विविध प्रांतों

में विभक्त करने का कार्य केंद्रीय सरकार का है। केंद्रीय सरकार को आवश्यकता हो तो वह इन मदों पर अतिरिक्त कर लगा कर इन करों से होनेवाली आय स्वयं अपने लिए ले सकती है।

सर आटो निमेयर की रिपोर्ट के आधार पर निश्चय किया गया कि जूट के निर्यात-कर का ६२$\frac{1}{2}$ प्रतिशत भाग उन प्रांतों को दिया जाय, जहां जूट पैदा होती है। आय-कर का ५० प्रतिशत भाग प्रांतों में नीचे लिखे प्रतिशत के अनुसार ५ वर्ष बाद उस समय से विभाजित किया जाय, जब रेल से काफ़ी आमदनी होने लगे—

बंबई १०; बंगाल १०; मद्रास ७$\frac{1}{2}$; संयुक्त प्रांत ७$\frac{1}{2}$; बिहार ५; पजाब ४; मध्य प्रांत २$\frac{1}{2}$; आसाम १; उड़ीसा १; सिंध १; पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत $\frac{1}{2}$ फ़ी सदी।

बंगाल, बिहार, आसाम. उड़ीसा, और पश्चिमोत्तर प्रांत को भारत सरकार का जो क़र्ज़ ३१ मार्च सन् १९३६ तक देना था, वह मंसूख़ कर दिया गया, और इसी प्रकार मध्य प्रांत का ३१ मार्च सन् १९३६ तक का बजट-क्षति-पूर्ति का क़र्ज तथा सुधार के पहिले का २ करोड़ रुपयों का क़र्ज मंसूख़ कर दिया गया।

केंद्रीय सरकार प्रांतीय सरकारों को १ अप्रैल सन् १९३७ से नीचे लिखे अनुसार आर्थिक सहायता देगी—

संयुक्त प्रांत—२५ लाख रुपए प्रति वर्ष, पांच वर्ष के लिए।

आसाम—३० लाख प्रति वर्ष।

पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत—१ करोड़ प्रति वर्ष; पांच वर्ष के बाद इस पर पुनर्विचार होगा।

उड़ीसा—प्रथम वर्ष ४७, लाख उस के बाद चार वर्ष तक ४३ लाख प्रति वर्ष और उस के बाद ४० लाख प्रति वर्ष।

सिंध—प्रथम वर्ष १ करोड़ १० लाख, पश्चात् १ करोड़ ५ लाख प्रति वर्ष, दस वर्ष तक।

उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार प्रांतों की अवस्था सुधरने की आशा नहीं है। पहले की भाँति उन की आय के साधन परिमित हैं, और उन को शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, बड़ी सड़कें बनाने, तथा कृषि और उद्योग-धंधों की उन्नति करने आदि की आवश्यकताएँ बहुत हैं। जब तक कि शासन-व्यय बढ़ा हुआ है (नवीन विधान से यह और भी बढ़ेगा), प्रांतीय सरकारों को उपर्युक्त जन-हितकारी कार्यों के लिए यथेष्ट रुपयों का अभाव ही रहेगा। यदि उन्हें आय-कर की पूरी रक़म मिल जाती तो वे कुछ स्वावलंबी हो सकती थीं; परंतु विधान के अनुसार उन्हें केवल आधा मिलेगा और वह भी पाँच वर्ष बाद, तथा रेल से क़ाफ़ी आमदनी होने पर, जो कि संदिग्ध ही है। वर्तमान अवस्था में यदि प्रांतीय सरकारें जन-हितकारी कार्य कुछ विशेष-रूप से करना चाहेंगी तो मंत्रियों को जनता पर कर-भार और भी बढ़ाना पड़ेगा।

राजस्व-विभाग—भारतीय राजस्व-विभाग का अध्यक्ष भारत सरकार का राजस्व-सदस्य होता है। यह विभाग भारत-सरकार का बजट बनाता और प्रांतीय सरकारों के आय-व्यय का निरीक्षण करता है। यही सरकारी अफ़सरों का वेतन, उन की छुट्टी, पेंशन, भत्ता और पुरष्कार आदि विषयों से संबंध रखनेवाले प्रश्नों पर विचार करता है, तथा मुद्रा और टकसाल का प्रबंध करता है। इस की एक शाखा सैनिक व्यय की व्यवस्था करती है।

राजस्व-विभाग में अर्थ-सदस्य (फाइनैंस मेंबर) के अतिरिक्त निम्न-लिखित पदाधिकारी होते हैं:—सेक्रेटरी, डिप्टी-सेक्रेटरी, अंडर-सेक्रेटरी, एसिस्टेंट सेक्रटरी रजिस्ट्रार, सुपरिंटेंडेंट और बहुत से क्लर्क।

साधारण विषय का कार्य उस का सुपरिंटेंडेंट अपनी ज़िम्मेवारी पर कर सकता है। ख़ास विषयों के कागज़ वह सेक्रेटरी की सिफ़ारिश से, अर्थ-सदस्य की अनुमति के लिए रखता है। सेक्रेटरी इस बात का ध्यान

रखता है कि कार्य-संचालन के नियमों का यथावत् ध्यान रक्खा गया है या नहीं। वह भारत सरकार का सेक्रेटरी होता है, और गवर्नर-जनरल से मिलता रहता है। जिन कागज़ों के संबंध में अर्थ-सदस्य और सेक्रेटरी में मतभेद होता है वे ही गवर्नर-जनरल के सामने रक्खे जाते हैं।

इसी प्रकार प्रांतीय अर्थ-विभाग का संगठन और कार्य होता है।

कुल तथा विशुद्ध आयव्यय—बजट-संबंधी एक विचारणीय प्रश्न यह है कि उस में कुल आयव्यय की रक़में दिखाई जाँय या विशुद्ध आयव्यय की। पद्धति के भेद से विविध रक़मों के अंकों तथा उन के योग में बहुत अंतर हो जाता है। उदाहरण के लिए ब्रिटिश भारत में केंद्रीय तथा प्रांतीय सरकारें प्रति वर्ष लगभग तीन सौ करोड़ रुपया विविध करों से वसूल कर के विभिन्न कार्यों में ख़र्च करती हैं, परंतु साधारणतया यही समझा जाता है कि वार्षिक सरकारी आय तथा व्यय लगभग दो-दो सौ करोड़ रुपए हैं; सरकारी हिसाब में आय तथा व्यय के अंतर्गत रक़मों का योग यही दिखाया जाता है। बात यह है कि रेल, डाक, तार, नहर आदि से जो कुल आय होती है, उस में से इन कार्यों के प्रबंध और संचालन आदि में ख़र्च होनेवाला रुपया निकाल कर विशुद्ध आय ही हिसाब में दिखाई जाती है। इसी प्रकार इन मदों के व्यय में, विविध कर्मचारियों के वेतन आदि का ख़र्च न दिखा कर केवल इन कार्यों में लगी हुई पूँजी का सूद ही दिखाया जाता है। इस के अतिरिक्त, उपर्युक्त विविध कार्यों में जो मूलधन लगता है वह भी ख़र्च की रक़मों में सम्मिलित नहीं किया जाता, अलग दिखाया जाता है। हिसाब की इस पद्धति से सरकारी वार्षिक आयव्यय दो-दो अरब रुपए के क़रीब ही रह जाता है। बजट में पूरी रक़में दिखाने से व्यवस्थापक-सभा के सदस्यों के सामने संपूर्ण बातें आ जाती हैं; परंतु रेल आदि व्यवसायिक कार्यों के आयव्यय का पूरा ब्यौरा देने से बजट बहुत बड़ा

हो जाता है और उस का विचार होने में कठिनाई होती है। अतः सुविधा की दृष्टि से इन (व्यवसायिक) कार्यों की विशुद्ध आयव्यय तथा अन्य कार्यों की संपूर्ण आयव्यय दिखाना उत्तम है। बजट की प्रत्येक मद स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिए, और विविध मदों का वर्गीकरण भी ऐसा होना चाहिए कि सदस्य उन पर सुगमता-पूर्वक अपना मत दे सकें।

अन्य विचारणीय बातें—साधारणतया किसी विशेष व्यय के लिए कुछ विशेष आय पहले से ही निर्धारित कर रखना ठीक नहीं हैं। जहाँ तक संभव हो समस्त व्यय का समस्त आय से ही मिलान करना चाहिए।

कभी-कभी ऐसा होता है कि सरकार के अधिकार में कुछ रक़म रिज़र्व-फ़ंड के रूप में छोड़ दी जाती है, जिसे वह आवश्यकता पड़ने पर ख़र्च कर सके। इस रक़म का हिसाब अगले साल के बजट में दिखाया जाता है। ऐसी प्रथा आपत्ति-जनक नहीं है। रक़म कम ही रक्खी जाती है, और आकस्मिक कार्य के लिए रखने की आवश्यकता भी होती है।

व्यय का पूरक नक़्शा—यदि किसी अकल्पित घटना के कारण सरकार को व्यय के लिए निर्धारित रक़म से अधिक की आवश्यकता हो तो गवर्नर-जनरल भारतीय व्यवस्थापक-मंडल के सामने उस अधिक ख़र्च को सूचित करनेवाला पूरक नक़्शा उपस्थित कराता है। उस के संबंध में विविध नियम उसी प्रकार लागू होते हैं, जैसे वार्षिक आयव्यय-अनुमानपत्र के संबंध में होते हैं।

इस व्यवस्था के परिणाम पर भी विचार कर लेना चाहिए। ऐसे बजट से आर्थिक प्रबंध-संबंधी विषयों में बड़ा उलट-फेर होता है, और इस से जनता की हानि-होती है। इस लिए यह युद्ध आदि अकल्पित घटनाओं के समय ही उचित है। अन्यथा यह संभव है कि शासक, व्यय का ग़लत अनुमान करने लगें, अथवा ठीक अनुमान कर के भी

उसे प्रतिनिधियों से छिपाने के लिए पहले बजट में कम रक़म दिखाएँ और शेष के लिए पीछे पूरक बजट बनाएँ। यह अनुचित है।

पूरक बजट की भांति असाधारण बजट की प्रथा भी विचारणीय है। कभी-कभी जिस व्यय को आमदनी से चुकाना चाहिए, उसे वैसा न कर, जनता से विशेष धन वसूल कर के चुकाने का प्रयत्न किया जाता है, और उस का हिसाब साधारण बजट से अलग रक्खा जाता है। जब तक कि विशेष कारण न हो, ऐसा करना ठीक नहीं है।

ख़र्च करने का ढंग—सरकार के विविध विभाग हैं, प्रत्येक विभाग में कई प्रकार के ख़र्च होते हैं, यथा कर्मचारियों का वेतन, आफ़िस-व्यय, पुरस्कार, भत्ता आदि। किसी कार्य में निर्धारित से अधिक ख़र्च न किया जाय, इस का ध्यान रक्खा जाता है। जिस कार्य के लिए जितना रुपया दिया जाता है, उस का ठीक-ठीक हिसाब रक्खा जाता है और उस की रसीद रखने की भी व्यवस्था की जाती है, जिस से कोई आदमी हिसाब में गड़-बड़ न कर सके। अधिकतर ख़र्च करने का काम 'इंपीरियल बैंक' द्वारा होता है।

आय वसूल करने की पद्धति—ब्रिटिश भारत यद्यपि शासन की दृष्टि से ज़िलों में विभक्त है, वास्तव में ये विभाग आय की दृष्टि से किए गए हैं। ज़िले के मुख्य अधिकारी को बहुत से स्थानों में 'कलेक्टर' कहा जाता है; कलेक्टर का अर्थ है, वसूल करने वाला। ज़िला-मेजिस्ट्रेट अपने ज़िले की मालगुज़ारी वसूल करने का उत्तरदायी होने से 'कलेक्टर' कहलाता है। उस के अधीन कई तहसीलदार होते हैं जो एक-एक तहसील के किसानों से, नंबरदारों और पटवारियों की सहायता से मालगुज़ारी और आबपाशी की रक़में वसूल करते हैं। एक तहसील के गाँवों की सब आमदनी तहसील में जमा होती है, वहाँ से वह ज़िले के ख़ज़ाने में भेजी जाती है। ज़िले के ख़ज़ाने में मालगुज़ारी और आबपाशी की आय के

अतिरिक्त, अन्य भिन्न-भिन्न सरकारी मदों की आय का भी हिसाब रहता है, परंतु अब अधिकांश ज़िलों में 'इंपीरियल बैंक' की शाखाएँ होने से ज़िले के ख़ज़ाने में उक्त आय का रुपया जमा नहीं किया जाता, सब रुपया 'इंपीरियल बैंक' में जमा होता रहता है।

हिसाब और उस की जाँच—प्रत्येक विभाग का हिसाब ठीक-ठीक रखने, और समय-समय पर उस की भिन्न-भिन्न शाखाओं और उप-शाखाओं के हिसाब की परीक्षा किए जाने का नियम है। इस काम के लिए योग्य व्यक्ति नियुक्त रहते हैं। समस्त देश का एक मुल्की हिसाब-विभाग रखता है। इस का प्रधान, एकाउंटेंट और आडीटर-जनरल होता है। प्रांतीय सरकारों का हिसाब प्रांतीय एकाउंटेंट-जनरल रखते हैं। हर एक ज़िले के प्रधान स्थान में कोष रहता है, इस में सरकारी आय एकत्र होती है और इस से स्थानीय ख़र्च की रक़म दी जाती है। एकाउंटेंट और आडीटर-जनरल का 'स्टाफ़' इन कोषों का निरीक्षण करता है। भिन्न-भिन्न विभागों के आडीटर (लेखा-परीक्षक) हिसाब की जाँच करते हैं और उस में जो भूलें होती हैं, उन की तरफ़ अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करते हैं। उदाहरण के लिए राज्य के रुपयों में से किसी व्यक्ति-विशेष के लिए तो कुछ ख़र्च नहीं किया गया है; जो व्यय हुआ है, वह नियम के अनुसार हुआ है या नहीं; किस की आज्ञा से हुआ है; कम या अधिक तो ख़र्च नहीं हुआ; उस की रसीदें ठीक-ठीक रक्खी गई हैं या नहीं; इसी प्रकार जो आय हुई है उस की रक़में, हिसाब में, ठीक-ठीक दिखाई गई हैं या नहीं; इस बात की जाँच की जाती है।

आडीटरों की रिपोर्ट से बड़ा लाभ होता है, भविष्य में वैसी त्रुटियाँ फिर न हों, इस की व्यवस्था की जाती है। कहना नहीं होगा कि हिसाब और उस की जाँचवाले अधिकारी अलग-अलग होने चाहिए।

राजस्व-नियंत्रण : पार्लिमेंट का संबंध—भारत मंत्री-भारतीय

विषयों में जो अधिकार रखता है, वह पार्लियामेंट के नाम से रखता है और अपने सब कामों के लिए उस के प्रति उत्तरदायी है। वह उस के सम्मुख प्रति वर्ष मई महीने की दूसरी से पंद्रहवीं तारीख़ तक भारतवर्ष के आय-व्यय का हिसाब पेश करता है और इस बात की सविस्तर रिपोर्ट देता है कि गतवर्ष भारत के विविध प्रांतों ने कितनी नैतिक या भौतिक उन्नति की है, तथा उन की क्या दशा है।

हिसाब की देख-भाल के लिए ब्रिटिश प्रतिनिधि-सभा (हाउस आव् कामन्स) की एक समिति बनती है। इस अवसर पर कभी-कभी भारतवर्ष की राजनैतिक या आर्थिक स्थिति की विवेचना होती है, और जो नीति काम में लाई गई हो, अथवा लाई जाने वाली हो, बतलाई जाती है। जो सदस्य भारतीय विषयों में अनुराग रखते हैं, वे सरकार के कामों की आलोचना करते हैं, और सुधारों की माँग पेश करते हैं। इसे बजट की बहस कहते हैं। कमेटी का प्रस्ताव केवल रीति-पालन के लिए होता है, और बहुधा तमाम कार्रवाई शुरू से आख़िर तक बड़ी नीरस रहती है।

सिद्धांत से पार्लियामेंट, भारतीय विषयों पर भारत-मंत्री द्वारा पूर्ण नियंत्रण करती है। सन् १९१९ ई० से भारत-मंत्री का वेतन ब्रिटिश कोष से मिलता है, अतः ब्रिटिश सरकार के आय-व्यय-संबंधी वाद-विवाद में भारतीय विषयों की कुछ चर्चा होती है, पार्लियामेंट में ऐसे सदस्य बहुत कम होते हैं, जिन्हें भारतीय विषयों का यथेष्ट ज्ञान हो; अतः सन् १९१९ ई० से प्रति वर्ष भारतीय विषयों पर

विचार करने के लिए पार्लियामेंट की एक सिलेक्ट कमेटी बनाई जाती है।

भारत-मंत्री का अधिकार—भारतीय आय-व्यय पर पूर्ण और अंतिम नियंत्रण ब्रिटिश पार्लियामेंट का है। वह यह नियंत्रण भारत-मंत्री द्वारा करती है। यह पार्लियामेंट का एवं ब्रिटिश-मंत्रि-मंडल का सदस्य होता है। इस के कार्यालय को 'इंडिया आफ़िस' और इस की सभा को 'इंडिया कौंसिल'[1] कहते हैं। इंडिया-कौंसिल में अब ८ से १२ तक सदस्य रहते हैं और उस का अधिवेशन प्रतिमास एक बार होता है, जिस का सभापति भारत-मंत्री या उस का नियुक्त किया हुआ कोई कौंसिल का सदस्य होता है।

इस कौंसिल के बहुमत बिना भारत-मंत्री—

(१) भारतवर्ष की आमदनी ख़र्च नहीं कर सकता;

(२) ऋण या ठेका नहीं दे सकता; और

(३) किसी महत्त्वपूर्ण पद पर किसी कर्मचारी की नियुक्ति नहीं कर सकता। राजस्व-विभाग के लिए एक 'राजस्व-समिति' नियत है। नियम के अनुसार, यह समिति भारतीय राजस्व-संबंधी सर्वोच्च संस्था है।

कौंसिल में दो सदस्य ऐसे होते हैं, जो राजस्व-संबंधी ज्ञान के कारण ही लिए जाते हैं। यह सदस्य प्रायः लंदन के सर्राफ़ें से व्यक्तिगत संबंध रखते हैं। इस लिए कौंसिल पर, और कौंसिल द्वारा भारतीय राजस्व पर, लंदन के सर्राफ़े का प्रभाव पड़ता है। भारत-मंत्री की कौंसिल के हिसाब की जाँच एक निरीक्षक द्वारा की जाती है।

हाई कमिश्नर—सन् १९१९ ई० से भारतवर्ष के लिए इंगलैंड में एक

---

[1] भारतीय-संघ की स्थापना के बाद यह सभा नहीं रहेगी। हाँ, भारत-मंत्री के कुछ परामर्श-दाता रहा करेंगे।

हाई कमिश्नर की नियुक्ति होती है। इस पदाधिकारी को उन विषयों में से कुछ सौंपे जाते हैं जो पहले भारत-मंत्री के अधीन थे, जैसे सरकार के लिए किसी माल का ठेका देना, विदेशों में स्टोर, रेलवे का सामान आदि खरीदना। औपनिवेशिक सरकारें स्वयं अपना हाई कमिश्नर नियुक्त करती हैं, परंतु भारत के लिए हाई कमिश्नर की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा न हो कर ब्रिटिश सरकार द्वारा होती है।

भारत सरकार और प्रांतीय सरकारों के अधिकार—नियम से तो भारतीय राजस्व पर भारत-मंत्री और उस की कौंसिल का पूर्ण अधिकार है, पर व्यवहार में भारत सरकार एवं प्रांतीय सरकारों को अपनी समझ के अनुसार कुछ कार्य करने का अधिकार है। वह निर्धारित सीमा में नया ख़र्च और नवीन पदों की सृष्टि कर सकती हैं। म्यूनिसिपैलिटियों, ज़िला-बोर्डों और पोर्ट ट्रस्टों को राजस्व-संबंधी अधिकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल से मिले हैं।

भारत सरकार तथा प्रांतीय सरकारें अपने आयव्यय के कार्य में प्रजा-प्रतिनिधियों के प्रति बहुत कम उत्तरदायी हैं, व्यवस्थापक-सभाओं को अनेक मदों पर मत देने का अधिकार ही नहीं है, जिन विषयों में उन्हें मत देने का अधिकार है, उन पर भी गवर्नर-जनरल और गवर्नर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर के अपनी इच्छानुसार ख़र्च कर सकते हैं, यह पहले कहा जा चुका है।

तीसरा परिच्छेद

व्यय का सिद्धांत और वर्गीकरण

सरकारी आयव्यय में व्यय का महत्व—व्यक्तिगत आयव्यय-संबंधी सिद्धांत और सरकारी आयव्यय के सिद्धांत में बड़ा अंतर है। मनुष्य प्रायः पहले अपनी आय को देखते हैं और उस के अनुसार ख़र्च निश्चय करते हैं। इस के विपरीत राज्य अपने सम्मुख पहले यह विचार रखता है कि उसे देश में क्या-क्या काम करने हैं, उन में कितना ख़र्च होगा।[1] इस ख़र्च के लिए वह अपनी आय-प्राप्ति के मार्ग निकालता है, और विविध निश्चय करता है। हाँ, जब युद्ध आदि के समय राज्य का ख़र्च बहुत अधिक बढ़ जाता है और करों के बढ़ाने से भी ठीक काम नहीं चलता, तब उसे किफ़ायत करने, और आय को लक्ष्य में रख कर ख़र्च करने का अधिकार होता है। कभी-कभी ऋण लेने की भी आवश्यकता हो जाती है। परंतु यह विशेष अवस्था की बात ठहरी। साधारणतया जैसा कि ऊपर कहा गया है ख़र्च का हिसाब लगा कर आय निश्चय की जाती है। इस लिए राजस्व के वर्णन में सरकारी व्यय का विचार पहले किया जायगा, और सरकारी आय का पीछे।

---

[1] व्यक्तिगत और सरकारी आयव्यय में यह भी अंतर है कि व्यक्तियों की दृष्टि में बचत अच्छी समझी जाती है, जब कि सरकारी हिसाब में बचत अच्छी नहीं समझी जाती, कारण, उस से अपव्यय की आशंका होती है। इस के विपरीत आय में कमी होने से अधिकारी ख़र्च करने में सावधान होते हैं।

व्यय के भेद—व्यय के दो भेद किए जाते हैं—साधारण और आसाधारण। प्रति वर्ष होनेवाला व्यय साधारण-व्यय कहलाता है। राजस्व में इसी का विशेष विचार किया जाता है। इस के विपरीत जो व्यय अकाल या युद्ध आदि में होता है, वह असाधारण व्यय कहलाता है। इस का परिमाण एवं समय अनिश्चित रहता है। इस का विचार प्रसंगानुसार किया जायगा।

साधारण व्यय के दो भेद किए जा सकते हैं।—(१) पूँजी-संबंधी व्यय—नहर और रेलों में ख़र्च होनेवाली रक़में ऐसे व्यय में गिनी जाती हैं। इस व्यय से भविष्य में आमदनी होती है, पर यह आवश्यक नहीं कि वह आमदनी व्यय के विचार से अधिक ही हो। ऐसा व्यय उत्पादक भी हो सकता है, और अनुत्पादक भी। भारतवर्ष में अनुत्पादक व्यय का उदाहरण सीमा-प्रांत की रेल हैं, इन से जो आय होती है वह बहुत ही कम होती है, अर्थात् यह सदैव घाटे पर चलती है। (२) साधारण व्यय का दूसरा भेद आमदनी से किया जानेवाला ख़र्च है। इस में कुछ ख़र्च ऐसा होता है, जो बार-बार होता है, और कुछ एक बार किए जाने पर फिर चिरकाल तक नहीं करना पड़ता। कर्मचारियों का वेतनादि तो प्रति मास ही देना होता है, पर किसी कार्य के लिए सरकारी इमारतों का ख़र्च बार-बार नहीं होता।

व्यय-संबंधी सिद्धांत—जैसा पहले कहा गया है, साधारण व्यय का ही विशेष विचार किया जाता है। इस व्यय के संबंध में निम्न-लिखित बातें ध्यान में रक्खी जानी आवश्यक हैं:—

१—जनता की भलाई की दृष्टि से समान उपयोगिता। प्रत्येक मद के ख़र्च की सीमांत-उपयोगिता यथासंभव समान रहनी चाहिए। अर्थात् प्रत्येक मद में ख़र्च किए जानेवाले रुपयों की अंतिम इकाई से जनता को समान लाभ हो। यह अंतिम इकाई केंद्रीय सरकार की मदों में एक

लाख रुपए हो सकती है, प्रांतीय सरकार की मदों में एक हज़ार, और स्थानीय संस्थाओं की मदों में संभव है, सौ रुपए ही हो।

सरकार के मुख्य कार्य पहले बताए जा चुके हैं। तदनुसार उसे विविध मदों में रुपया ख़र्च करना होता है। प्रत्येक मद में कितना रुपया ख़र्च किया जाय, इस का विचार राजस्व-शास्त्र में किया जाता है, और इस में उपर्युक्त समानता के नियम के अनुसार निश्चय किया जाता है। हाँ, व्यवहार में इस नियम का उपयोग बहुधा बहुत कठिन होता है, क्योंकि किसी मद में ख़र्च करने से जनता को जो लाभ होता है, उस का ठीक-ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। कुछ लाभ प्रत्यक्ष होता है और कुछ परोक्ष। फिर लोगों की रुचि और विचार भिन्न-भिन्न होते हैं। किसी को एक मद का ख़र्च अधिक उपयोगी जँचता है, किसी को दूसरी मद का। इस प्रकार केवल व्यापारिक कार्यों के जिन में होने-वाले लाभ को द्रव्य के रूप में मापा जा सकता है, अन्य विषयों में बहुधा मत-भेद होता है।

जिन देशों में उत्तरदायी शासन-पद्धति प्रचलित हो, वहाँ जनता के बहुमत के अनुसार उपर्युक्त विषय का निर्णय किया जाता है। परंतु भारतवर्ष जैसे देशों में, जहाँ प्रतिनिधियों का प्रभाव बहुत कम हो, समानता के सिद्धांत की बहुधा अवहेलना की जाती है।

अस्तु, इस सिद्धांत के अनुसार यह विचार होना चाहिए कि प्रत्येक मद पर किए हुए ख़र्च के अंतिम एक लाख या एक हज़ार रुपए का लाभ राज्य को समान हो। उदाहरण के लिए सेना, शिक्षा और कृषि पर जो रक़म व्यय करने का विचार किया जाय, उस के संबंध में सोचना चाहिए कि इन मदों की रक़मों में प्रत्येक में ख़र्च किए गए अंतिम एक हज़ार रुपए की उपयोगिता समान हो; यदि सेना में व्यय किए हुए अंतिम एक हज़ार रुपए से राज्य को उतना लाभ न हो, जितना उस एक हज़ार को शिक्षा में व्यय

करने से हो, तो उस एक हज़ार रुपए की रक़म को सेना से हटा कर शिक्षा-कार्य में लगाया जाय; इसी प्रकार फिर विचार कर के देखा जाय और यदि इस बार ऐसा प्रतीत हो कि सेना में एक हज़ार रुपया ख़र्च करने की अपेक्षा उसे कृषि में ख़र्च करने से राज्य को अधिक लाभ होगा तो सेना को मद में इतनी कमी कर के कृषि में इतनी ही वृद्धि की जानी चाहिए। इस तरह बार-बार सोच कर सब मदों की रक़में ठीक करनी चाहिए।

२—मितव्यय—अर्थात् अल्पतम व्यय से उद्देश्य-सिद्धि। ख़र्च में मितव्यय का विचार होने का महत्त्व सर्व-विदित है। मितव्यय कई प्रकार से हो सकता है। शासन-संबंधी भिन्न-भिन्न पदों पर जिन आदमियों की नियुक्ति की जाय, उन में उन की योग्यता के विचार के साथ यह भी विचार रहना चाहिए कि देशी व्यक्तियों के योग्य होते हुए भी विदेशियों को नियुक्ति कर के बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें तथा सफ़र-ख़र्च आदि न दिया जाय। इसी तरह राज्य में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए जो सामान ख़रीदना हो उस के वास्ते बिना प्रयोजन विदेशों को रुपया न भेजा जाय, वरन् उसे यथा-संभव देश में ही तैयार कराया जाय, जिस से यदि आरंभ में कुछ व्यय अधिक भी हो तो पीछे देश में उस संबंध में तयारी हो जाने से अंततः राज्य को बहुत लाभ ही होगा। भारतवर्ष में इस सिद्धांत की बहुत अवहेलना की जाती है। यहाँ नौकरियों के भारतीयकरण को तथा स्वदेशी सामान तैयार करने के कार्य को प्रोत्साहन की बड़ी ज़रूरत है।

३- स्वीकृति—प्रत्येक मद पर ख़र्च करने के लिए जनता के प्रतिनिधियों की स्वीकृति ली जानी चाहिए, और किसी विभाग

के अधिकारी को स्वीकृत रक़म से अधिक ख़र्च न करना चाहिए। हिसाब की जाँच के समय उपर्युक्त विषय का सम्यक् विचार होना चाहिए।

४—स्पष्टता—ख़र्च का पहले से ठीक अनुमान रहे तथा उस का हिसाब इस प्रकार सर्व-साधारण के सामने रक्खा जाय कि सुगमता-पूर्वक समझ में आ जाय और वे उस के संबंध में अपने आलोचनात्मक विचार प्रकट कर सकें। ऐसी व्यवस्था से फ़ज़ूल ख़र्च रुकता है और ऊपर कहे हुए मितव्यय का विचार होने में सहायता मिलती है।

राज्य को कर आदि देनेवालों को यह जानने का अधिकार है कि राज्य की आय किन कार्यों में व्यय होती है। आज-कल प्रायः सभी सभ्य देशों में सरकारी आयव्यय का हिसाब सर्व-साधारण के अवलोकनार्थ सर्व-साधारण की भाषा में प्रकाशित करने की रीति है, परंतु जिन देशों में शिक्षा का यथेष्ट प्रचार न हो, वहाँ उक्त हिसाब प्रकाशित करने से भी यथोचित उद्देश्य-पूर्ति नहीं होती। भारतवर्ष में सरकारी हिसाब अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित किया जाता है।

पुनः ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि सरकारी आयव्यय-विवरण सर्व-साधारण को अल्प मूल्य में मिल सके। यद्यपि यहाँ विविध पत्र-पत्रिकाओं में, संक्षेप में व्यय का हिसाब तथा कुछ टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित होती हैं, सरकार की ओर से इस विषय की कोई व्यवस्था नहीं है कि सर्व-साधारण को उस का ज्ञान हो जाय और उसे आलोचना करने का अवसर दिया जाए।

व्यय का वैज्ञानिक वर्गीकरण—वैज्ञानिक व्यय का क्रम वह माना जाता है जिस में व्यय की मदों का वर्गीकरण सरकार के कर्तव्यों के अनुसार हो (सरकार के कर्तव्य प्रथम परिच्छेद में बताए जा चुके हैं।)

इस के अनुसार वर्गीकरण इस प्रकार होना चाहिए :—

(१) रक्षा के लिए—सेना, जल-सेना, वायु-सेना, दुर्ग-निर्माण, सैनिक सामग्री।

(२) शांति-सुव्यवस्था के लिए—इस में न्याय, पुलिस, जेल और शासन सम्मिलित हैं। शासन में गवर्नर-जनरल, गवर्नरों, और ज़िला मजिस्ट्रेटों आदि के संबंध में किए हुए ख़र्च का समावेश होता है। इस कार्य के लिए 'राजनैतिक ख़र्च' की भी आवश्यकता होती है। सीमा पर रहने वाले कुछ सरदारों को शांति-स्थापन के लिए जो एलाउंस (भत्ता) दिया जाता है, तथा एजंट गवर्नर-जनरल और पोलिटिकल एजंटों के वेतनादि में जो ख़र्च होता है, वह 'राजनैतिक ख़र्च' के अंतर्गत गिना जाता है। केंद्रीय तथा प्रांतीय व्यवस्थापक-मंडलों और सेक्रेटेरियों की मद में किए जाने वाले ख़र्च का, पेंशनों का, और कर वसूल करने के ख़र्च का समावेश शांति-सुव्यवस्था की मद में ही होता है।

(३) जन-हितकारी या सामाजिक—शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि, उद्योग, सिविल निर्माण-कार्य, मुद्रा, टकसाल और विनिमय, भूगर्भ, वनस्पति तथा जीवविद्या-संबंधी कार्य, मनुष्य-गणना, अकाल-रक्षा।

(४) व्यवसायिक—रेल, डाक, और तार जंगल, नहर, आदि।

व्यय का सरकारी वर्गीकरण—व्यय का वर्गीकरण समय-समय पर भिन्न-भिन्न लेखकों ने अनेक प्रकार से किया है। भारतवर्ष में सरकार अपने आयव्यय के अनुमान-पत्र में विविध रक़में इस प्रकार दिखाती है :—

१—कर वसूल करने का ख़र्च—आयात-निर्यात-कर, आय-कर, नमक, अफ़ीम, मालगुज़ारी, स्टांप (क) ग़ैर-अदालती, (ख) अदालती, जंगल, रजिस्टरी।

२—रेल

३—आबकारी

४—डाक और तार

५—ऋण

६—सिविल-शासन—साधारण शासन, लेखा-परीक्षा, न्याय, जेल, पुलिस, बंदरगाह, धर्म (ईसाई), राजनैतिक, वैज्ञानिक, शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योगधंधे, हवाई जहाज़, विविध विभाग।

७—मिंट, टकसाल और विनिमय

८—निर्माण-कार्य और सड़कें

९—विविध—अकाल और बीमा, पेंशन और एलाउंस, स्टेशनरी और छपाई, विविध,

१०—सेना—स्थल-सेना, जल-सेना, सैनिक निर्माण-कार्य।

११—प्रांतीय और केंद्रीय सरकार की पारस्परिक लेनी-देनी।

यह वर्गीकरण स्पष्टतः दूषित और अवैज्ञानिक है। इस के क्रम में कोई सिद्धांत नहीं है। इस वर्गीकरण को न बदलने का कारण यह है कि सरकार को फिर तुलना के लिए पुराने बजटों को भी नवीन रूप में लाना होगा। इस में कुछ श्रम और कठिनाई अवश्य है। पर सुधार की दृष्टि से ऐसा करना उपयोगी है।

केंद्रीय, प्रांतीय, और स्थानीय व्यय—व्यय को प्रायः केंद्रीय और प्रांतीय में तथा कहीं-कहीं केंद्रीय, प्रांतीय, और स्थानीय व्यय में विभक्त किया जाता है। इस के विषय में भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ हैं, तथा इस विभाजन में पूर्व इतिहास तथा तत्कालीन शासन-प्रणाली का भी

बहुत प्रभाव पड़ता है। इस विषय में मुख्य बातें यह हैं—सेना, रेल, डाक, तार, मुद्रा और टकसाल आदि जो कार्य संपूर्ण राज्य के लिए समान रूप से किया जाना आवश्यक हो, उस के लिए किया हुआ व्यय केंद्रीय माना जाता है, और जो व्यय किसी ख़ास प्रांत के लिए ही आवश्यक हो और जिस में प्रांत-भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार की पद्धतियाँ व्यवहृत हों, उस के लिए किया जानेवाला व्यय प्रांतीय समझा जाता है यथा—शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, न्यायालय, पुलिस आदि।

जो कार्य किसी नगर, ग्राम, अथवा ग्राम-समूह के लिए ही आवश्यक हो, उस के लिए किया जानेवाला व्यय स्थानीय व्यय समझा जाता है—जैसे सड़कों की सफ़ाई, रोशनी, प्रारंभिक शिक्षा आदि।

देश की समुचित उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि केंद्रीय सरकार यथासंभव कम विषय अपने अधीन रख कर शेष सब के संचालन का अधिकार निम्नस्थ संस्थाओं को दे दे। केंद्रीय सरकार विशेषतया नीति निर्धारित करे और प्रांतीय या स्थानीय संस्थाओं को विविध कार्यों में आर्थिक सहायता दे कर उन का केवल निरीक्षण करती रहे। भारतवर्ष में सरकार ने अधिकारों को बहुत ही केंद्रीभूत कर रक्खा है, अब इस में सुधार हो रहा है।

भारतवर्ष में केंद्रीय कार्य—शासन-संबंधी विषयों के दो भाग हैं—(१) अखिल भारतवर्षीय या केंद्रीय विषय, और (२) प्रांतीय विषय। इसी वर्गीकरण के आधार पर भारत-सरकार (केंद्रीय सरकार) और प्रांतीय सरकारों के कार्यों तथा उन की आय के स्रोतों का विभाग किया गया है। केंद्रीय विषयों का उत्तरदायित्व भारत-सरकार पर है। यदि किसी विषय के संबंध में यह संदेह हो कि यह प्रांतीय है या केंद्रीय, तो इस का निपटारा कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल करता है, परंतु इस विषय में अंतिम अधिकार भारत-मंत्री को है।

संक्षेप में, भारतवर्ष में मुख्य-मुख्य केंद्रीय विषय यह हैं:—(१) देश-रक्षा—भारतीय सेना तथा हवाई जहाज़, (२) विदेशी तथा विदेशियों से संबंध, (३) देशी राज्यों से संबंध, (४) राजनैतिक ख़र्च (५) बड़े बंदरगाह, (६) डाक, तार, टेलीफ़ोन और बेतार के तार, (७) आयात-निर्यात-कर, तथा नमक और अखिल भारतवर्षीय आय के अन्य साधन, (८) सिक्का, नोट आदि (९) भारतवर्ष का सरकारी ऋण (१०) पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक, (११) भारतीय हिसाब-परीक्षक विभाग (१२) दीवानी और फ़ौजदारी क़ानून तथा उन के कार्य-विधान (१३) व्यापार, बैंक और बीमा-कंपनियों का नियंत्रण, (१४) तिजारती कंपनियाँ और समितियाँ, (१५) अफ़ीम आदि पदार्थों की पैदावार, खपत, और निर्यात का नियंत्रण, (१६) कापीराइट (किताब आदि छापने का पूर्ण अधिकार) (१७) ब्रिटिश भारत में आना, अथवा यहाँ से विदेश जाना, (१८) केंद्रीय पुलिस का संगठन, (१९) हथियार और युद्ध-सामग्री का नियंत्रण, (२०) मनुष्य-गणना, और आँकड़े या 'स्टेटिसटिक्स,' (२१) अखिल भारतवर्षीय नौकरियाँ, (२२) प्रांतों की सीमा, और, (२३) मज़दूरों-संबंधी नियंत्रण।

प्रांतीय विषय—ये संक्षेप में निम्न-लिखित हैं—(१) सार्वजनिक शांति (सेना छोड़ कर)। (२) प्रांतीय अदालतें। (३) पुलिस (४) जेल। (५) प्रांत का सार्वजनिक ऋण। (६) प्रांतीय सरकारी नौकरियाँ, नौकरी-कमीशन। (७) प्रांतीय पेंशन। (८) प्रांतीय निर्माण-कार्य, भूमि और इमारतें। (९) सरकारी तौर से भूमि प्राप्त करना। (१०) पुस्तकालय तथा अजायब-घर। (११) प्रांतीय व्यवस्थापक-मंडल के चुनाव। (१२) प्रांतीय मंत्रियों तथा व्यवस्थापक-सभाओं और परिषदों के सभापति, उपसभापति और सदस्यों का वेतन और भत्ता। (१३) स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ। (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफ़ाई, अस्पताल, जन्म और मृत्यु का लेखा। (१५) तीर्थ-यात्रा (१६)

क़ब्रिस्तान (१७) शिक्षा। (१८) सड़कें, पुल, घाट और आवागमन के अन्य साधन (बड़ी रेलों को छोड़ कर)। (१९) जल-प्रबंध, आबपाशी, नहर, बाँध, तालाब और जल से उत्पन्न होने वाली शक्ति। (२०) कृषि कृषि-शिक्षा और अनुसंधान, पशु-चिकित्सा, तथा काँजी-हाउस। (२१) भूमि, मालगुज़ारों और किसानों के पारस्परिक संबंध। (२२) जंगल। (२३) खान, तेल के कुओं का नियंत्रण, और खनिज-उन्नति (२४) मछलियों का व्यवसाय। (२५) जंगली पशुओं की रक्षा। (२६) गैस, और गैस के कारख़ाने। (२७) प्रांत के अंदर का व्यापार-वाणिज्य, मेले-तमाशे, साहूकारा और साहूकार। (२८) सराय। (२९) उद्योग-धंधों की उन्नति, माल की उत्पत्ति, पूर्त्ति और विवरण। (३०) खाद्य पदार्थों आदि में मिलावट, तोल और माप। (३१) शराब और अन्य मादक वस्तुओं संबंधी क्रय-विक्रय और व्यापार (अफ़ीम की उत्पत्ति छोड़ कर)। (३२) ग़रीबों का कष्ट-निवारण, बेकारी। (३३) कारपोरेशनों का संगठन, संचालन और परिसमाप्ति, अन्य व्यापारिक साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि संस्थाएँ, सहकारी समितियाँ। (३४) दान, और देने वाली संस्थाएँ। (३५) नाटक, थियेटर और सिनेमा। (३६) जुआ और सट्टा। (३७) प्रांतीय विषयों संबंधी क़ानूनों के विरुद्ध होनेवाले अपराध। (३८) प्रांत के काम के लिए आँकड़े तैयार करना। (३९) भूमि का लगान, और मालगुज़ारी-संबधी पैमाइश। (४०) आबकारी, शराब, गाँजा, अफ़ीम आदि पर कर,। (४१) कृषि-संबधी आय पर कर। (४२) भूमि, इमारतों पर कर। (४३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार-संबंधी कर। (४४) खनिज अधिकारों पर कर। (४५) व्यक्ति-कर। (४६) व्यापार, पेशे धंधे पर कर। (४७) पशुओं और किश्तियों पर कर। (४८) माल की बिक्री और विज्ञापनों पर कर। (४९) चुंगी। (५०) विलासिता की वस्तुओं पर कर— इस में दावत, मनोरंजन, जुए सट्टे पर का कर सम्मिलित है। (५१) स्टांप। (५२) प्रांत के भीतर के जल-मार्गों में जानेवाले माल और यात्रियों

पर कर। (५३) मार्ग-कर (टोल)। (५४) अदालती फ़ीस को छोड़ कर, किसी प्रांतीय विषय-संबंधी फ़ीस।

व्यय का एक वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जा सकता है कि कौन-कौन सी मद्द पर जनता के प्रतिनिधियों का मत लिया जाता है, और कौन-कौन सी पर नहीं लिया जाता। परंतु ऐसा वर्गीकरण पराधीन, अर्द्ध-पराधीन, या अनुत्तरदायी शासन-पद्धति वाले देशों में ही किया जाता है, सभ्य और उन्नत-राज्यों में तो सभी मद्दों पर लोक निर्वाचित सदस्यों वाली व्यवस्थापक-सभा की स्वीकृति ली जाती है, और उपर्युक्त वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं रहती। इस संबंध में, भारतवर्ष में होनेवाले व्यय के विषय में पहले विचार किया जा चुका है।

चौथा परिच्छेद

देश-रक्षा का व्यय

सैनिक व्यय—भारतवर्ष में सरकारी व्यय की सब से बड़ी मद सेना है। इस व्यय में (क) काम करने वाली (इफ़ेक्टिव), और काम न करने वाली सेना, (ख) समुद्री बेड़ा और (ग) सैनिक मकान आदि का व्यय सम्मिलित है। इन में (क)-संबंधी कुछ व्यय भारतवर्ष के अतिरिक्त इंगलैंड में भी होता है। भारतवर्ष में व्यय विशेषतया निम्नलिखित विषयों में होता है:— स्थायी सेना, शिक्षा, अस्पताल, डिपो, सेना का सदर मुक़ाम (हेड क्वार्टर), जल-सेना, हवाई फ़ौज, वायुयान आदि, सहायक और टेरीटोरियल विशेष कार्य-कर्त्ता, स्टाक-हिसाब। सेना-संबंधी जो व्यय इंगलैंड में होता है, वह मुख्यतया इन विषयों में होता है:— भारतवर्ष की ब्रिटिश-सेना के कार्य के बदले 'वार आफ़िस' (युद्ध-विभाग) को देने के वास्ते, भारतवर्ष में काम करने वाली ब्रिटिश सेनाओं की यात्रा के समय का वेतन और भत्ता, अफ़सरों के परिवार की फ़र्लो (अवकाश) का भत्ता, अफ़सरों के परिवार, विवाह आदि का भत्ता, ब्रिटिश सेना से लिए हुए स्टोर के बदले युद्ध-विभाग को देने के वास्ते, ब्रिटिश सेना को कपड़ों का एलाउंस और बेकारी का बीमा, विनिमय-संबंधी, स्टोर ख़रीदने के लिए, हवाई फ़ौज, स्टाक-हिसाब आदि।

सैनिक व्यय की वृद्धि—सन् १८५६ ई० में भारतवर्ष का सैनिक-व्यय साढ़े बारह करोड़ रुपए था। अगले वर्ष यहाँ राज्य-क्रांति हुई, उस के बाद यह व्यय साढ़े चौदह करोड़ रुपया हुआ, सन् १८८५ ई० में यह सत्रह करोड़ हो गया। योरोपीय महायुद्ध से पूर्व सन् १९१३-

१४ ई० में यह लगभग ३० करोड़ था। महायुद्ध में यह और बढ़ा। सन् १६-२१-२२ ई० में यह ७८ करोड़ पर जा पहुँचा। इस वर्ष क़िफ़ायत-कमेटी नियत हुई। पश्चात् व्यय कुछ घटा। सन् १६३४-३५ ई० में व्यय का अनुमान ५० करोड़ रुपया था।

सार्वजनिक ऋण का प्रधान कारण सैनिक व्यय की यह भयंकर वृद्धि है। इस लिए उस की एक बड़ी मात्रा सैनिक व्यय के लिए ली हुई समझनी चाहिए, और ऋण के सूद का एक बड़ा भाग सैनिक-व्यय में ही जोड़ना चाहिए। पुनः सीमा-प्रांत की रेलें भी सैनिक आवश्यकताओं के कारण ही बनाई जाती हैं; और उन में जो घाटा रहता है, वह भी सैनिक व्यय में सम्मिलित होना चाहिए। इस प्रकार यह सब हिसाब जोड़ने से मालूम होता है कि सैनिक व्यय की जो रक़में ऊपर दिखाई गई हैं वास्तव में उन से बहुत अधिक ख़र्च हुआ है।

वृद्धि के कारण—हम सैनिक व्यय की वृद्धि के कारणों पर विचार करते हैं तो निम्नलिखित बातें सामने आती हैं:—

(क) सन् १८५७ ई० की राज्य-क्रांति से पहले यहाँ अंगरेज़ सिपाहियों की संख्या ३६ हज़ार और देशी सिपाहियों की संख्या २३१ हज़ार थी। पश्चात् सरकार ने तय किया कि प्रति दो देशी सिपाहियों के पीछे एक अँगरेज़ी सिपाही रक्खा जाय, और भारतीय सेना का प्रबंध इंगलैंड के युद्ध-विभाग अर्थात् 'वार आफ़िस' से हो। एक अँगरेज़ सैनिक, उसी पद पर कार्य करनेवाले देशी सैनिक की अपेक्षा सब मिला कर प्रायः पाँच गुना वेतन पाता है। इस के अतिरिक्त उस का तथा उच्च अँगरेज़ अफ़सरों का इंगलैंड से आने-जाने तथा पेंशन का व्यय भी भारत-सरकार को देना पड़ता है।

(ख) वेतन और पेंशन के अतिरिक्त अँगरेज़ सैनिकों को तरह-तरह के एलाउंस मिलते हैं। अयोग्य तथा मरे हुए सिपाहियों के घर-

वालों को धन देने के लिए ख़ैरात की मद खुली हुई है। महायुद्ध के बाद ब्रिटिश युद्ध-विभाग (वार आफ़िस) ने दो नई मदें और निकाल दी हैं। उन में एक का नाम है बेकारी का बीमा, और दूसरी का ब्याह का भत्ता। कमेटियों की बैठक और विनिमय आदि अन्य-अन्य मद्दों में भी ब्रिटिश युद्ध-विभाग भारत-सरकार से प्रति वर्ष करोड़ों रुपए लेता है।

(ग) अँगरेज़ सिपाही भारतवर्ष के व्यय से शिक्षा पाकर ८/१० वर्ष यहाँ नौकरी करते हैं; ये पीछे लौट कर जन्म भर ब्रिटिश सरकार की रिज़र्व (रक्षित) सेना का काम देते हैं। इन्हें भारतवर्ष से निर्धारित रक़म मिलती रहती है।

(घ) युद्ध की नई-नई आविष्कृत बहु-मूल्य वैज्ञानिक सामग्री भी सैनिक व्यय को अधिकाधिक बढ़ाती रहती है।

(ङ) भारत-सरकार के सन् १८४९ वाली पश्चिमोत्तर-सीमा से आगे बढ़ने से भी सैनिक व्यय की वृद्धि हुई है। वज़ीरिस्तान में उसे प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए व्यय करना होता है।

(च) भारतवर्ष की सीमा से बाहर भारतवर्ष का रुपया ख़र्च करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। उस समय कुछ वाद-विवाद होता है, पर प्रायः स्वीकृति मिल जाती है सन् १८३८ ई० से १९०० तक अफ़ग़ानिस्तान, सूडान, चित्राल, तिब्बत,

ट्रांसवाल आदि में जो युद्ध हुए उन युद्धों के ख़र्च का बड़ा हिस्सा भारतवर्ष ने, पार्लियामेंट की स्वीकृति से, दिया। गत योरोपीय महायुद्ध में भारत से जो सेना गई थी, उस का ख़र्च भी भारतवर्ष की आय से दिए जाने के लिए पार्लियामेंट से स्वीकृति ली गई थी।

(छ) भारतवर्ष को इंगलैंड के जहाज़ी बेड़े के ख़र्च में भाग लेना पड़ता है।

किफ़ायत कमेटी का मत—सन् १९२१-२२ ई० की किफ़ायत कमेटी ने सेना-संबंधी विविध भागों में की जानेवाली किफ़ायत का ब्यौरा जंगी लाट के हाथ में छोड़ते हुए, यह मत प्रकाशित किया था :—

(क) लड़नेवाली फ़ौज घटाकर तीन करोड़ की किफ़ायत की जाय।

(ख) प्रबल रक्षित सेना रक्खी जाय, जिस से युद्ध के समय हिंदुस्तानी बटालियनें २० फ़ी सदी घटाई जा सकें।

(ग) मोटरगाड़ियाँ, जंगी जहाज़ और स्टाक घटाए जाँय; सामान-संग्रह और फ़ौजी कार्य में किफ़ायत की जाय।

कमेटी ने यह स्वीकार करते हुए भी कि यहाँ शांति-काल में भी युद्ध-काल की तरह सेना रक्खी जाती है, सैनिक व्यय को क्रमशः ५० करोड़ रुपए तक घटाए जाने की आशा प्रकट की थी।

सैनिक खर्च घटाने के उपाय—(क) भारतीय सेना का इंगलैंड के युद्ध-विभाग (वार आफ़िसर) से संबंध तोड़ कर उस का प्रबंध भारत

सरकार के हाथ में दिया जाय, और भारतीय व्यवस्थापक-सभा के मतानुसार इस विभाग का व्यय निश्चय हुआ करे। इस समय ब्रिटिश युद्ध-विभाग-मन-माना ख़र्च भारत-सरकार पर डाल देता है; यह अनुचित है।

(ख) अँगरेज़ी सैनिक जितने दिन यहाँ नौकरी करें, उतने दिन का उचित वेतन उन्हें दिया जाय, उन की शिक्षा का भार ब्रिटिश-सरकार अपने ऊपर ले, क्योंकि उन का अधिकांश लाभ उसे ही मिलता है। अँगरेज़ी सैनिकों के एलाउंस और पेंशन में भी उचित कमी की जाय।

(ग) सरकार प्रजा को संतुष्ट रक्खे और उस के बल को अपना बल समझे, सेना का भारतीयकरण हो अर्थात् ख़र्चीला ब्रिटिश भाग कम कर के उस के स्थान में वीर, देश-प्रेमी भारत-संतान को भरती किया जाय। भारतवासियों की सैनिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो, जिस से समय पर स्वदेशवासी स्वयं अपनी रक्षा कर सकें, और स्थायी सेना यथा-शक्ति कम रखनी पड़े।

(घ) सीमा-पार की स्वतंत्रता-प्रेमी जातियों की स्वतंत्रता में बिल्कुल हस्तक्षेप न किया जाय, वहाँ से सब सेना हटा ली जाय।

(च) सैनिक स्टोर, सामग्री, संग्रहालय (डिपो) निर्माण-कार्य आदि में किफ़ायत की जाय। अनावश्यक सामान बड़ी मात्रा में जमा रख कर उस में रुपया न फँसाया जाय, तथा यथा-संभव सब सामान भारत-वर्ष में ही तैयार कराने और ख़रीदने का विचार रक्खा जाय।

(छ) समान उपयोगिता के सिद्धांत का विचार रक्खा जाय, अर्थात् इस मद्द में ख़र्च की रक़म का निश्चय करते समय यह सोचा जाय कि इस के अंतिम एक करोड़ रुपए के ख़र्च से जनता को उतना ही लाभ मिलता है या नहीं, जितना किसी अन्य मद्द में एक करोड़ रुपया ख़र्च करने से मिल सकता है। जब ऐसा न हो, वह एक करोड़ रुपया इस मद्द से हटा

कर ऐसी अन्य मद में ख़र्च किया जाय, जिस में ख़र्च करने से उस की उपयोगिता अधिक होती हो।

उपर्युक्त सिद्धांत का विचार सैनिक व्यय के विविध अंगों में भी किया जाना चाहिए। भविष्य में भूमि की अपेक्षा आकाश में युद्ध होने की अधिक संभावना है, अतः स्थल-सेना के व्यय में क्रमशः कमी करते हुए वायुयानों और आकाश-युद्ध-सामग्री की वृद्धि में अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, जिस से भारतीय सेना की कार्य-क्षमता बढ़े। इस समय भारी ख़र्च सहते हुए भी भारतवर्ष आवश्यकता होने पर आत्म-रक्षा में स्वावलंबी होगा, इस की आशा बहुत कम है।

(ज) सैनिक व्यय की रक़म का विचार करते हुए भारतवर्ष की आर्थिक दशा का, तथा यहाँ के कुल सरकारी आय-व्यय का ध्यान रक्खा जाना आवश्यक है। जेनेवा की अंतर्राष्ट्रीय परिषद् ने यह सिफ़ारिश की थी कि कुल सरकारी आय का २० प्रति शत तक सेना में ख़र्च किया जाना चाहिए। भारतवर्ष में केंद्रीय तथा प्रांतीय कुल सरकारी वार्षिक आय लगभग २०० करोड़ है। इस हिसाब से यहाँ सैनिक व्यय ४० करोड़ रुपए होना चाहिए, परंतु इस में जनता की आर्थिक अवस्था का भी विचार किया जाना आवश्यक है। यहाँ पर कर-भार बहुत अधिक है। इस विचार से यहाँ ४० करोड़ से बहुत कम ख़र्च होना चाहिए। इस विषय का सम्यक् विचार होने के लिए यह आवश्यक है कि यह ख़र्च जनता के प्रतिनिधियों के मतानुसार हो, उन का इस पर पूर्ण नियंत्रण हो।

*

पाँचवाँ परिच्छेद

शांति और सुव्यवस्था का व्यय

शांति और सुव्यवस्था-संबंधी ख़र्च में निम्नलिखित ख़र्च सम्मिलित हैं :—

(क) कर वसूल करने का ख़र्च

(ख) शासन

(ग) न्याय, जेल, और पुलिस

(घ) राजनैतिक ख़र्च

(च) पेंशन

कर वसूल करने का ख़र्च—इस मद में आयात-निर्यात कर, मालगुज़ारी, स्टांप, जंगल, रजिस्टरी, अफ़ीम, नमक और देशी माल पर कर की आय वसूल करनेवाले कर्मचारियों के वेतन आदि के अतिरिक्त, अफ़ीम और नमक तैयार करने का ख़र्च भी सम्मिलित है। अफ़ीम के लिये पोस्त के डोडे, सरकार की देख भाल और नियंत्रण में, परिमित स्थान में ही बोए जाते हैं। कुल अफ़ीम सरकारी एजेंटों द्वारा बेची जाती है। विगत वर्षों में कर वसूल करने के ख़र्च में बहुत वृद्धि हुई है। वृद्धि का कारण विशेषतया सरकारी कर्मचारियों के वेतन का बढ़ना है। भारतवर्ष में अन्य अनेक देशों की अपेक्षा इस मद के ख़र्च का, कुल सरकारी ख़र्च से अनुपात अधिक है, इस का एक कारण यह भी है कि यह देश बहुत विस्तृत है और प्रति ग्राम, आय की रक़म कम रहती है, तथापि यदि उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति हो तो उन के वेतनादि में बहुत क़िफ़ायत हो सकती है, और फलतः इस विभाग में होनेवाला ख़र्च

भी घट सकता है। इस समय यद्यपि निम्न कर्मचारियों का वेतन मामूली है, उच्च पदों पर अधिकतर विदेशी और विशेषतः अँगरेज़ नियुक्त हैं जिन्हें वेतन बहुत अधिक दिया जाता है। इन नौकरियों के भारतीयकरण द्वारा इस मद के ख़र्च में कमी की जानी चाहिए।

सिविल-शासन—इस मद के केंद्रीय भाग में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित होता है:—गवर्नर-जनरल, तथा भारत-सरकार के सदस्यों, भारतीय व्यवस्थापक-सभा और राज्य परिषद्-संबंधी ख़र्च, केंद्रीय सेक्रेटेरियट और हेड-क्वार्टरों के आफ़िस का ख़र्च, बंदरगाहों, हवाई जहाज़ों, स्वदेश (होम) विभाग, राजनैतिक विभाग, तथा हिसाब का जाँच-संबंधी ख़र्च,' चीफ़ कमिश्नरों के प्रांतों में होनेवाला (चीफ़ कमिश्नरों, ज़िलाधीशों, और उन के अधीन कर्मचारियों, न्याय, पुलिस और जेल, विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि और उद्योग-धंधे संबंधी) ख़र्च, । इस मद के प्रांतीय भाग में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित होते हैं:—गवर्नरों और उन के मंत्रियों के वेतन और दौरे आदि का ख़र्च, प्रांतीय व्यवस्थापक-सभाओं, तथा परिषदों-संबंधी ख़र्च; प्रांतीय सेक्रेटेरियट, रेवन्यू बोर्ड, कमिश्नरों, कलेक्टरों और उन के सहायकों तथा तहसीलदारों और उन के अधीन कर्मचारियों का वेतन और आफ़िस ख़र्च; हिसाब की जाँच संबंधी ख़र्च।

भारतवर्ष में ऊँची नौकरियाँ प्रायः अँगरेज़ों को ही दी जाती हैं। यहाँ उन्हें कितना भारी वेतन दिया जाता है इस के कुछ उदाहरण लीजिए:—

अधिकारी	वार्षिक वेतन
गवर्नर-जनरल	२,५०,८००रु०
गवर्नर-जनरल की प्रबंधकारिणी कौंसिल के मेंबर प्रत्येक	८०,०००, रु०
(कमांडर-इन-चीफ़)	१,००,०००, रु०

गवर्नर	६६,००० से १,२०,००० रु० तक
चीफ़ कमिश्नर	३६,००० रु०

ऊपर सिर्फ़ वेतन के अंक दिए हैं; एलाउंस के अंक तो और भी अधिक चकित करते हैं। उदाहरणार्थ, वाइसराय का वार्षिक वेतन और एलाउंस मिल कर चौदह पंद्रह लाख तक पहुंच जाता है। संसार के, आर्थिक दृष्टि से उन्नत देशों में भी, कई एक में शासकों का वेतन और एलाउंस इतना अधिक नहीं है।

भारतवर्ष में सरकारी पदाधिकारियों की छुट्टी के नियम भी ऐसी उदारता से बनाए गए हैं कि उन के द्वारा होनेवाले काम में हर्ज न होने देने के वास्ते, कम से कम ४० फ़ी सदी आदमी अधिक रखने पड़ते हैं। इस प्रकार जो काम १०० आदमी कर सकें, उस के लिए हमें १४० रखने पड़ते हैं। इस से ख़र्च बहुत बढ़ जाता है।

इस व्यय में काफ़ी किफ़ायत करने की आवश्यकता है। जिन विभागों को मिलाकर इकट्ठा चलाया जा सके, उन के लिए अलग-अलग अधिक ख़र्च न किया जाय? तथा जब किसी अधिकारी का कोई विशेष कार्य न हो तो उस का नाम-मात्र का कार्य औरों में बाँट दिया जाना चाहिए उदाहरणार्थ, मदरास प्रांत में कमिश्नरों के बिना भी काम बराबर चल रहा है, तो अन्य प्रांतों में इन के वेतन तथा इन के कार्यालयों का ख़र्च बंद कर दिया जाना चाहिए, परंतु केवल दो चार बड़े-बड़े पदों को हटाने से ही काम न चलेगा। वर्तमान अवस्था में सभी पदों का वेतन निष्पक्ष भाव से स्थिर होना चाहिए; रंग या जाति का भेद-भाव नहीं रखना चाहिए। यदि अँगरेज़ साधारण न्यायानुमोदित वेतन पर काम न करें तो स्वदेश-प्रेमी सुयोग्य भारत-संतान से काम लिया जाना चाहिए। बड़े पदों का वेतन कम कर के उन स्थानों पर भारतीय अधिक संख्या में नियुक्त किए जाँय। उन्हें समुद्र-यात्रा आदि का भारी एलाउंस देने की भी आवश्यकता

न होगी, जो विदेशियों को दिया जाता है। परंतु इस में एक बाधा है। बहुत से उच्च पदाधिकारियों का वेतन क़ानून से निर्धारित है, उस में केंद्रीय अथवा प्रांतीय व्यवस्थापक-मंडल कुछ कमी नहीं कर सकता। अतः इस मद्द में कुछ वास्तविक कमी तभी हो सकती है, जब विधान में यथेष्ठ परिवर्तन हो। अस्तु, सरकारी पदाधिकारियों के वेतनादि पर लोक प्रतिनिधियों को पूर्ण नियंत्रणाधिकार रहना चाहिए।

न्याय—इस मद्द में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित हैं:—हाईकोर्ट, क़ानूनी अफ़सर, एडमिनिस्ट्रेटर-जनरल, जूडीशल कमिश्नर, दीवानी और सेशन कोर्ट, (ज़िला और सेशन जज, सबार्डिनेट जज, मुंसिफ़, मुहाफ़िज़ दफ़्तर, और अन्य कर्मचारी) अदालत ख़फ़ीफ़ा, और, वकीलों की परीक्षा का ख़र्च।

इस विभाग की कार्य-क्षमता घटाए बिना भी इस के ख़र्च में कमी की जा सकती है। आनरेरी मजिस्ट्रेटों (अवैतनिक) न्याय करनेवालों, और मुंसिफ़ों की नियुक्ति अधिकाधिक होनी चाहिए। हाँ, वे सुयोग्य, ईमानदार और विचारवान् व्यक्ति ही हों। आजकल अधिकांश अच्छे व्यक्तियों की नियुक्तियाँ न होने से सर्वसाधारण की धारणा आनरेरी मजिस्ट्रेटों के विषय में अच्छी नहीं है। तनिक विवेक से काम लिया जाय तो देश में पर्याप्त सुयोग्य व्यक्ति मिल सकते हैं, जो अपने उत्तरदायित्व को समझते हुए सेवा-भाव से न्याय-कार्य का संपादन कर सकते हैं। अस्तु, ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति से वेतन-भोगी मेजिस्ट्रेटों और मुंसिफ़ों की संख्या में और फलतः इस मद्द के ख़र्च में काफ़ी कमी हो सकती है।

पुनः स्थान-स्थान पर पंचायतों की स्थापना से भी इस मद्द में बड़ी बचत होती है। उस की वृद्धि और विस्तार के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने की आवश्यकता है। वर्तमान काल में पंच नामज़द किए जाते हैं, वे निर्वाचित होने लगें तो वे अधिक विश्वास-भाजन बन जायँ। पंचायतों

में विशेष लाभ यह है कि पंच स्थानीय व्यक्ति होने से मामले मुकद्दमे के संबंध में अच्छी जानकारी रखते हैं और इस लिए न्याय अच्छा कर सकते हैं। क्योंकि पंचायतों में वकील लोग पैरवी नहीं करते, अतः इन के द्वारा मुक़द्दमे का फ़ैसला कराने में लोगों का ख़र्च भी कम होता है।

जेल-विभाग—इस मद में जेल-प्रबंध, तथा जेलों के सामान-संबंधी ख़र्च सम्मिलित हैं। जेलों के प्रबंध-व्यय में इंस्पेक्टर-जनरल और उन के दफ़्तर आदि, सेंट्रल जेल, ज़िला जेल, हवालात, जेल-संबंधी पुलिस, जरायम पेशा जातियों के सुधारार्थ किया हुआ व्यय, और क़ैदियों के जेल से छूटने पर उन्हें निर्वाहार्थ दिया हुआ रुपया शामिल है। जेलों के सामान में क़ैदियों के लिए लिया हुआ खाद्य पदार्थ ख़रीदने में तथा जेल के कारख़ानों में काम करनेवाले नौकर, क्लर्क, और यांत्रिक के वेतन में तथा पत्र-व्यवहार आदि में होनेवाला ख़र्च गिना जाता है।

वर्तमान दशा में जेलों पर किया जानेवाला व्यय राज्य या समाज के लिए यथेष्ट हितकर नहीं है। जो आदमी एक बार क़ैद हो चुकता है, वह जेल के वातावरण और व्यवहार के कारण बहुधा और अधिक अपराधी बन जाता है, तथा समाज की उस पर संदेह-भरी दृष्टि रहने से उसे अपनी आजीविका के लिए बड़ी कठिनाई होती है। इस से उस की अपराध-प्रवृत्ति और भी बढ़ जाती है। जेलों की प्रणाली में आमूल परिवर्तन होने की आवश्यकता है।

पुलिस-विभाग—इस मद का ब्यौरा इस प्रकार है:—

(क) इंस्पेक्टर-जनरल, डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल, इत्यादि बड़े-बड़े अफ़सरों का वेतन और आफ़िस ख़र्च।

(ख) ख़ुफ़िया (सी० आई० डी०) विभाग का ख़र्च।

(ग) ज़िला सुपरिंटेंडेंट, उन के मातहत अफ़सर, पुलिस के सिपाही इत्यादि के वेतन और आफ़िस ख़र्च।

(घ) गाँवों की पुलिस का ख़र्च।

(च) रेलवे पुलिस का ख़र्च।

सरकार का पुलिस का, और ख़ास कर ख़ुफ़िया-पुलिस विभाग का व्यय बहुत बढ़ा हुआ है। प्रायः साधारण एवं ख़ुफ़िया दोनों प्रकार की पुलिस में बहुत कम शिक्षित और बहुत कम सभ्य व्यक्ति रहते हैं। निम्न कर्मचारियों के वेतन भी बहुत कम हैं। आवश्यकता है कि पुलिस कर्मचारियों की संख्या कम की जाय। हाँ, जो व्यक्ति रहें वे अधिक योग्य शिक्षित और सभ्य हों। उच्च पदाधिकारियों का वेतन कम करने तथा भारतवासियों को अधिकाधिक नियुक्ति करने से इस मद के ख़र्च में बहुत कमी हो सकती है।

गाँवों की पुलिस के ख़र्च के संबंध में किफ़ायत की ज़्यादा गुंजाइश मालूम नहीं होती, उसका अधिकांश भाग

चौकीदारों का वेतन ही है, जो बहुधा बहुत कम होता है। यदि सरकार प्रजा को संतुष्ट रख सके तो पुलिस के बल की, (एवं इस विभाग के लिए ख़र्च की) आवश्यकता बहुत कम रह जाय।

राजनैतिक ख़र्च—इस मद में बहुत-सा ख़र्च पश्चिमी सीमा के स्थानों में होता है, वहाँ सरदारों को शांति-स्थापन के लिए विविध रक़में दी जाती हैं। विदेशों में अथवा भारतवर्ष के देशी राज्यों में, भारत-सरकार के जो एजंट रहते हैं उन का वेतन आदि भी इसी मद के ख़र्च में सम्मिलित होता है। इस ख़र्च पर व्यवस्थापक-मंडल के सदस्यों को मत देने का अधिकार नहीं है। इस ख़र्च में वास्तविक कमी करने के लिए सीमा-प्रांत-संबंधी नीति में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है।

पेंशन—पेंशन देना सिद्धांत से अच्छा है, इस से सरकारी कर्मचारियों को निर्धारित अवधि तक भली प्रकार कार्य संपादन कर चुकने पर अपने निर्वाह की इतनी चिंता नहीं रहती, अतः वे अपना कार्य यथासंभव संतोष-जनक बनाए रखते हैं। परंतु यह स्मरण रखने की बात है कि पेंशन सेवा करने के उपलक्ष्य में दिया जाता है, यह एक प्रकार से वेतन का ही स्वरूप है, अतः उन्हीं कर्मचारियों को दी जानी उचित है जो साधारण वेतन पर, और काफ़ी समय तक काम करें।

छठा परिच्छेद

जन-हितकारी कार्यों का व्यय

जन-हितकारी कार्यों में निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं:—शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा; कृषि और उद्योग; सिविल निर्माण-कार्य; मुद्रा टकसाल और विनिमय; विज्ञान और बंदरगाहों-संबंधी कार्य।

शिक्षा—इस मद में इन विषयों का ख़र्च होता है :–विश्व-विद्यालय और कालिज; माध्यमिक (सेकेंडरी) हाई स्कूल; प्रारंभिक शिक्षा; अन्य ख़ास-ख़ास स्कूल, डायरेक्टर, इंस्पेक्टर इत्यादि का वेतन; आफ़िस ख़र्च; छात्रवृत्ति।

इस मद में ख़र्च अपेक्षाकृत बहुत कम होता है और उस का जनता को यथेष्ट लाभ नहीं मिल रहा है। भारतवर्ष की शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। कालिजों से निकले हुए अधिकतर युवक इधर-उधर बेकार फिरते हैं, उन्हें अपनी आजीविका के उपार्जन का मार्ग नहीं मिलता, और उन का जीवन बड़ा संकटमय होता है। अनेक बार तो आत्महत्या के भी समाचार मिलते हैं। औद्योगिक और शिल्प-व्यवसाय आदि की शिक्षा की बहुत ज़रूरत है।

भारतवर्ष इस समय कृषि-प्रधान देश है, परंतु यहाँ की शिक्षा इस दृष्टि से भी उपयोगी नहीं हो रही है। अनेक स्थानों में भाषा का माध्यम ही अँगरेज़ी है, देशी भाषा नहीं। कृषि-कालिज और कृषि-स्कूलों से निकलनेवाले युवकों की प्रायः ग्रामों में निवास करने तथा खेती का काम करने की रुचि नहीं रहती, अथवा यदि रुचि भी हो तो उन के पास

आवश्यक भूमि आदि साधन नहीं होते। इस का सुधार होना चाहिए, उपयुक्त कृषिशिक्षा-संस्थाओं की, तथा कृषि को एक अनिवार्य विषय के रूप में रखनेवाले माध्यमिक स्कूलों की, बहुत आवश्यकता है।

देश में निरक्षरता का भयंकर साम्राज्य है। सन् १९११-१२ ई० में स्वर्गीय गोखले ने ब्रिटिश भारत में प्रारंभिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य किए जाने के लिए प्रस्ताव किया था। उस समय विशेषतया आर्थिक कठिनाईयों के कारण सरकार ने उसे स्वीकार न किया। अब सब प्रांतों ने इस शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता स्वीकार कर ली है, परंतु प्रगति बहुत कम हुई है। उदाहरण के लिए संयुक्त-प्रांतीय सरकार ने उन म्युनीसिपैलटियों को शिक्षा-संबंधी व्यय का दो-तिहाई रुपया देना स्वीकार किया है, जो अपने क्षेत्र में प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य करें, परंतु प्रायः म्युनीसिपैलटियों की आय के साधन इतने कम और उन की अन्य ज़रूरतें इतनी अधिक हैं कि वे शिक्षा का एक-तिहाई ख़र्च अपने ऊपर नहीं ले सकतीं। यही कारण है कि बहुत कम म्युनीसिपैलटियों ने अपनी हद में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क करने का प्रबंध किया है। ज़िला-बोर्डों की हालत तो और भी ख़राब है, ग्रामों में शिक्षा प्रचार की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है बहुत कम ग्रामों में अभी शिक्षा अनिवार्य की गई है। यदि यह महत्वपूर्ण कार्य इसी प्रकार चला तो यथेष्ट शिक्षा प्रचार के लिए सैकड़ों वर्ष लग जायँगे। इस लिए प्रांतीय सरकारों को शीघ्र ही ग्रामों में शिक्षा अनिवार्य किए जाने का प्रबंध करना चाहिए।

हमारी समझ में, इस की सब से उत्तम विधि यह है कि सरकार प्रत्येक ज़िला-बोर्ड को ज़िले की मालगुज़ारी का एक-तिहाई भाग शिक्षा-प्रचार और अन्य कार्यों के लिए दे दिया करे। इस से वे अनायास ही अपने-अपने ज़िले में शिक्षा को अनिवार्य और निःशुल्क कर सकेंगे।

जिला-बोर्डों को स्वयं भी शिक्षा-प्रचार की ओर उचित ध्यान देना चाहिए।

दूसरे विभागों की तरह इस विभाग में भी ऊँचे-ऊँचे अधिकारियों के वेतन और बाहरी टीप-टाप के ख़र्च में बहुत कमी करने की ज़रूरत है। सर्व-साधारण को भी चाहिए कि राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकाधिक उद्योग करें।

धर्म—इस मद से ईसाई पादरियों को वेतनादि दिया जाता है। इस का उद्देश्य मुल्की तथा सैनिक ईसाई-पादरियों की नैतिक उन्नति है। विगत वर्षों में इस मद का ख़र्च बढ़ कर ३३ लाख रुपए हो गया है, वृद्धि का कारण विशेषतया वेतन का बढ़ना है। इस मद का ख़र्च भारत सरकार द्वारा होता है, और इस पर व्यवस्थापक-मंडल को मत देने का अधिकार नहीं होता। यह क़ानून द्वारा निर्धारित है। जब कि भारतवर्ष में हिंदू, मुस्लिम, पार्सी आदि और भी कई धर्म प्रचलित हैं, सरकार द्वारा एक विशेष धर्म के लिए कुछ ख़र्च किया जाना सिद्धांत से सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है; या तो सरकार सभी धर्माधिकारियों के लिए ख़र्च करे, अथवा एक विशेष धर्म के लिए किए जानेवाले ख़र्च को भी बंद कर दे।

चिकित्सा और स्वास्थ्य-रक्षा—इस मद में इन विषयों का ख़र्च सम्मिलित है:—

(अ) चिकित्सा—कार्यालय व्यय; सुपरिंटेंडेंट; ज़िला-चिकित्सा अफ़सर, और अन्य कर्मचारी; अस्पताल और शफ़ाख़ाने; सामान; मकान-किराया; विविध कर्मचारियों का वेतन और भत्ता आदि; रोगियों के वस्त्र और भोजन; चिकित्सार्थ सहायता; दाइयां, सेवा-समिति, आयुर्वैदिक कालिज आदि; मेडिकल स्कूल और कालिज; पागल-ख़ाना; रासायनिक परीक्षक।

(आ) स्वास्थ्य–कार्यालय-व्यय; वेतन, भत्ता और सामान आदि; स्वास्थ्य के लिए सहायता; ज़िला-बोर्डों और अन्य संस्थाओं को; यात्रा के स्थानों को; नगरों या देहातों में स्वास्थ्य की उन्नति; प्लेग, मेलेरिया, और छूत की बीमारियों का निवारण।

भारतवर्ष में मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ी हुई है, महामारियों का भयंकर प्रकोप है। गाँवों और शहरों के रोगियों की संख्या और अवस्था देखते हुए इस विभाग में ख़र्च बहुत कम होता है। इस के बढ़ाए जाने की ज़रूरत है। इस से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि सिर्फ़ डाक्टर लोग ही अधिक संख्या में नियुक्त किए जाँय और अस्पतालों तथा शफ़ाख़ानों की ही संख्या बढ़ाई जाय। वैद्यों और हकीमों की भी यथेष्ट नियुक्ति की जानी चाहिए। ग़रीब आदमियों को मुफ़्त दवाई देने के लिए काफ़ी औषधालय खुलने चाहिए। सेवा-समितियों को सहायता दे कर उन से भी बहुत काम कराया जा सकता है। देहातों में तो जनता की स्वास्थ्य-रक्षा के प्रबंध की बहुत ही कमी है। सरकारी और ग़ैर-सरकारी सभी प्रयत्नों की अवश्यकता है।

कृषि—इस मद का ख़र्च इन विषयों में होता है:—

(अ) निरीक्षण—अधीन कर्मचारी; पशुपालन; कृषि-प्रयोग; कृषि-इंजिनियरिंग; कृषि-कालिज और अन्वेषण-शाला; अन्य निरीक्षक कर्मचारी; कृषि-फ़ार्म; नुमाइश और मेले; वनस्पति-शाला; ज़िलों के और अन्य बाग़; कृषि-स्कूल।

(आ) पशु-संबंधी व्यय—निरीक्षण; नुमाइश या मेलों में इनाम; अस्पताल और शफ़ाख़ाने; पशुपालन-क्रिया; अधीन कर्मचारी।

(इ) सहकारी शाख़—रजिस्ट्रार; डिप्टी और सहायक रजिस्ट्रार; क्लर्क और नौकर; हिसाब की जाँच; सफ़र का भत्ता; आकस्मिक व्यय; छोटे नौकरों का वेतन; टाइप राइटर, किताब, कपड़े आदि।

जिन किसानों से सरकार प्रति वर्ष लगभग ३४ करोड़ रुपया माल-

गुज़ारी वसूल करती है, उन की भलाई के लिए केवल तीन करोड़ रुपए का ख़र्च बहुत कम है। किसान ही देश के अन्नदाता हैं, इस मद में कम से कम तिगुना तो व्यय होना चाहिए।

पशुओं के संबंध में भी ख़र्च बढ़ाना चाहिए। पशु-चिकित्सा विभाग को स्थापित हुए कई वर्ष हो गए, तो भी अभी तक अनेक गाँवों में पशुओं की चिकित्सा का उचित प्रबंध करना बाक़ी है। सहकारिता के लाभ अब जनता को प्रकट हो गए हैं, इस कार्य को भी बहुत बढ़ाने की ज़रूरत है। कृषि-विभाग के प्रयत्नों पर ही किसानों की, और इस लिए अधिकांश देश की उन्नति निर्भर है। देश में प्रति वर्ष अनाज की भयंकर कमी रहती है। यदि कृषि-विभाग के अफ़सर गाँवों में जा कर अपनी देख-रेख में किसानों को नए तरीक़ों से खेती करने को उत्साहित करें, और उत्तम बीज आदि की सहायता दें तो देश में अन्न की उपज सहज ही बढ़ सकती है। निस्संदेह इस काम के लिए कृषि-विभाग के अफ़सर देश-प्रेमी एवं अनुभवी होने चाहिए।

सन् १९३५-३६ ई० से भारत-सरकार ने ग्रामोन्नति के लिए विशेष व्यय करना आरंभ किया है। उस वर्ष एक करोड़ रुपया इस कार्य के लिए निर्धारित किया गया, तथा अगले वर्ष बजट में बचत होने पर वह भी इसी मद में लगाने का विचार किया गया। सरकार द्वारा ख़र्च की जाने वाली रक़म का परिमाण, विशाल ग्राम-क्षेत्र तथा ग्राम-जनता की दृष्टि से बहुत ही कम है। परंतु इसका भी सम्यक् उपयोग नहीं होता। अधिकतर रुपया सरकारी कर्मचारियों के वेतन और भत्ते आदि में, तथा कुछ दिखावटी कामों में ख़र्च होता है। लोक-प्रतिनिधियों तथा जन-सेवकों का सहयोग प्राप्त नहीं किया जाता, और जो व्यक्ति सेवा-भाव से ग्राम-कार्य करते हैं, उन्हें किसी प्रकार की सहानुभूति या सहायता नहीं दी जाती। यही कारण है कि कृषि-विभाग द्वारा किए जानेवाले खर्च से कृषकों को यथेष्ट लाभ नहीं पहुँचता।

उद्योग-धंधे—इस मद में ख़र्च इन विषयों में होता है—निरीक्षण, उद्योग-धंधों को सहायता, अन्वेषण-संस्थाएँ, उद्योग और शिल्प-संस्थाएँ, औद्योगिक बोर्ड की इच्छा से खर्च होनेवाला ख़र्च।

इस विभाग में भी खर्च बहुत कम होता है। उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने के लिए खर्च बढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही इस विभाग के कर्मचारी जनता के अधिक संपर्क में आएँ और मितव्ययिता-पूर्वक लगन से काम करें, तभी यथेष्ट लाभ हो सकता है। महात्मा गांधी के अखिल-भारतीय चर्खा-संघ ने ग्रामोद्योगों की उन्नति के लिए बड़ा उपयोगी काम किया है। सरकारी कर्मचारियों को इस से शिक्षा लेनी चाहिए तथा इस विभाग के खर्च से जनता को अधिकतम लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सिविल निर्माण-कार्य—इस मद के केंद्रीय भाग में भारत-सरकार से संबंध रखनेवाली इमारतें, तथा दफ़्तर, एवं समुद्रों में रोशनी-घर आदि बनाने तथा उन की मरम्मत करने का व्यय सम्मिलित है, और प्रांतीय सिविल निर्माण-कार्य के ख़र्च में निम्नलिखित खर्च होता है:— नई इमारतों का खर्च, नई सड़कों का खर्च, सड़कों और इमारतों की दुरुस्ती का खर्च, अफ़सरों का वेतन और आफ़िस खर्च, औज़ार इत्यादि खरीदने का खर्च, म्युनीसिपैलिटी, ज़िला बोर्ड और क़स्बों की इमारतों के लिए दी जानेवाली रक़म, स्वास्थ्य-रक्षा के लिए निर्माण-कार्य, इमारतें तथा पुल आदि।

इस विभाग में बहुधा अच्छा ईमानदारी का काम नहीं होता। यथेष्ट सावधानी बर्तने से बड़ी बचत हो सकती है, और उस बचत में कुछ और रुपया मिला कर ज़िला-बोर्डों की वे नई सड़कें बनवाई जा सकती हैं, जिन की व्यापार अथवा आमदोरफ़्त के लिए अत्यंत आवश्यकता है और जो धनाभाव के कारण नहीं बनवाई जा रही हैं।

मुद्रा, टकसाल और विनिमय—इस मद के केंद्रीय हिसाब में, इन विषयों के कार्यालयों तथा टकसालों को चलाने का ख़र्च शामिल है। विनिमय की क़ानूनी दर एक शिलिंग छः पेंस फ़ी रुपया है। इस प्रकार इंगलैंड में भारतवर्ष-संबंधी जो ख़र्च होता है, उसे चुकाने के लिए एक पौंड पीछे, तेरह रुपए पाँच आने चार पाई दिया जाता है। जब कभी यह दर गिर जाती है, उदाहरण के लिए फ़ी रुपया एक शिलिंग चार पेंस हो जाती है, और प्रति पौंड १५ रु० देने पड़ते हैं, तो इस से जो क्षति होती है, वह विनिमय की मद के ख़र्च में डाल दी जाती है। (यदि विनिमय की दर बढ़ जाय तो उस से होनेवाला लाभ, विनिमय की आय में शामिल किया जाता है।)

इस मद के प्रांतीय हिसाब में अधिकांश केवल विनिमय-संबंधी ख़र्च ही होता है। विनिमय की दर से जब प्रांतों को हानि होती है, तो वह इस मद के ख़र्च में दिखाई जाती है।

सातवाँ परिच्छेद

व्यवसायिक कार्यों का व्यय

व्यवसायिक कार्य—भारतवर्ष में सरकार द्वारा किए जानेवाले व्यवसायिक कार्य निम्नलिखित हैं:—रेल, डाक और तार, जंगल, नहरें, तथा स्टेशनरी और छापाखाना।

रेल—सन् १९२५ ई० से रेलों का हिसाब अन्य सरकारी हिसाब से पृथक् रक्खा जाने लगा है। रेलों का काम यहाँ सन् १८४९ ई० से प्रारंभ हुआ। आरंभ में उन का प्रबंध और संचालन विविध कंपनियों द्वारा होता रहा। सरकार ने उन के लिए एक निर्धारित लाभ की ज़िम्मेदारी ले ली थी, अतः उन्हों ने मितव्ययिता से काम नहीं किया। बहुत-सा ख़र्च अंधाधुंध कर डाला। कालांतर में बहुत सी लाइनें सरकार ने ख़रीद लीं, इन में कुछ का प्रबंध वह स्वयं करती है, और कुछ का कंपनियों के ही हाथ में है। प्रबंध करनेवाली कंपनियों को शर्तनामे के अनुसार मुनाफ़ा तथा सूद मिलता है।

रेल की मद में निम्नलिखित व्यय होता है:—

(क) सरकारी रेलों का ख़र्च, ऋण पर सूद, कंपनियों की लगाई पूंजी पर सूद, रेलों के ख़रीदने के लिए वार्षिक वृत्ति, क्षति-पूर्त्ति-निधि।

(ख) सहायता-दत्त कंपनियों-संबंधी ख़र्च।

किफ़ायत कमेटी ने सन् १९२२ ई० में लाइनें उखाड़ने और फिर से बैठाने की फ़ज़ूलख़र्ची की आलोचना की, और ऐसी लाइनों के ख़र्च की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया, जिन से उस समय मुनाफ़ा नहीं

होता था। कमेटी ने बतलाया कि कितनी ही लाइनों में ज़रूरत से ज़्यादा इंजिन और डिब्बे रक्खे गए हैं, उस की सिफ़ारिश थी की वे मुनाफ़े की लाइनों का खर्च घटाया जाय। सब रेलों में काम चलाने का खर्च, इस हिसाब से घटाना चाहिए कि सरकार ने जितनी पूँजी लगाई है, उस पर मामूली हालत में कम से कम ५॥ फ़ी सदी मुनाफ़ा हो। उच्च कर्मचारियों का वेतन घटाने तथा आवश्यक सामान भारतवर्ष में ही बनवाने से भी इस मद्द में बचत की जानी चाहिए।

डाक और तार—इस मद्द के व्यय में अधिकांश इस कार्य में लगाई हुई पूँजी का सूद ही है। इस विभाग संबंधी विशेष बातें आगे इस से होनेवाली आय के प्रसंग में कही जाँयगी।

जंगल—इस मद् में निम्न विषयों के ख़र्च का समावेश हैं—संचालन-व्यय; चीफ़ कंज़रवेटर, क्लर्क, नौकर, डेरे आदि का व्यय; जंगलों की रक्षा, और विस्तार; पशु, स्टोर, औज़ार, पुल आदि; जंगल से लकड़ी और दूसरी पैदावार लाने का ख़र्च; अफ़सर, नौकर, क्लर्क आदि का वेतन; कार्यालय-व्यय आदि।

अन्य विभागों की भाँति इस में भी बड़े-बड़े अफ़सरों का वेतन और संख्या कम करने से बचत हो सकती है।

आबपाशी—इस मद् में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित होता है:—(१) पुरानी नहरों के चालू रखने का ख़र्च (२) नहरों में लगी हुई पूँजी का ब्याज (३) नई नहरों का ख़र्च।

सरकार नहरों का काम क्रमशः बढ़ा रही है, यह अच्छी बात है, इस से किसानों को लाभ होता है और सरकार को भी बड़ी आमदनी होती है। इस कार्य के बराबर बढ़ते रहने की अभी बहुत ज़रूरत है।

स्टेशनरी और छापाखाना—इस का ब्यौरा इस प्रकार है:—सरकारी और जेल के प्रेस के सुपरिंटेंडेंट और अन्य कर्मचारियों का

वेतन और अलाउंस, प्रेस की मशीन और सामान, गोदाम, जिल्द बँधाई, टाइप ढालना आदि आदि; स्टेशनरी जो सरकारी स्टोर से ली गई।

विशेष वक्तव्य—व्यय की मदों में अब केवल ऋण का सूद रहता है। इस विषय का सविस्तर विचार अन्यत्र एक स्वतंत्र परिच्छेद में किया जायगा।

आठवाँ परिच्छेद

आय के साधन

प्राक्कथन—जब से राजा और प्रजा का संबंध होने लगा, तभी से राजा को अपने मुख्य अथवा गौण सभी कार्यों को करने के लिए धन की आवश्यकता होने लगी। इसी लिए राजा को प्रजा से धन मिलने लगा। राजा को मिलनेवाले इस धन का स्वरूप देश-काल के अनुसार बदलता रहा है। पहले एक समय ऐसा भी रह चुका है कि प्रजा राजा को उस के विविध कार्यों के लिए स्वयं ही धन दे दिया करती थी। अब राजा कर या टैक्स लगा कर तथा अन्य प्रकार से आवश्यक धन वसूल करता है।

राज्य की आय के साधन—आज कल राज्य की आय के निम्नलिखित साधन होते हैं:—

(१) स्वयं सरकार द्वारा अधिकृत तथा प्रबंधित संपत्ति, नज़ूल।

(२) उत्तराधिकारी के बिना मरनेवाले व्यक्तियों की संपत्ति।

(३) युद्ध आदि के लिए, लोगों का स्वेच्छा-पूर्वक दिया हुआ दान।

(४) चंदा या सहायता, और ज़ब्त किया हुआ माल।

(५) महसूल या किराए-भाड़े आदि से होने वाली व्यवसायिक आय।

(६) फ़ीस या शुल्क।

(७) कर।

इन में से प्रथम तीन साधनों के विषय में कुछ विशेष वक्तव्य नहीं है। शेष के संबंध में कुछ विचार आगे किया जाता है।

ज़ब्त किया हुआ माल और जुर्माना—कुछ घोर राजद्रोह आदि के अपराध करनेवाले व्यक्ति का माल सरकार द्वारा ज़ब्त किया जाता है। यह बहुत कम दशाओं में होता है, पर जब भी होता है, तो यह सरकारी आय का साधन बनता है, यद्यपि इस का मुख्य उद्देश्य आय-प्राप्ति नहीं होता, अपराधी व्यक्ति को दंड देना होता है। जुर्माने की बात अपेक्षा-कृत साधारण है। जब कोई व्यक्ति राज्य के क़ानूनों का उल्लंघन करता है तो उसे दंड या जुर्माना, अथवा दोनों होते हैं। सरकारी कर समय पर न चुकने की दशा में भी जुर्माना होता है। कभी-कभी कुछ व्यक्तियों के अपराध के कारण गाँव या नगर भर पर जुर्माना किया जाता है। जुर्माने का उद्देश्य आय नहीं होता, यद्यपि इस से आय होती है। उद्देश्य का विचार करते हुए, यह करों के अंतर्गत नहीं माना जाता, पर कुछ लोग इसे कर मानते भी हैं।

महसूल या किराए-भाड़े आदि की आय—अंगरेज़ी में इस के लिए 'रेट्स' शब्द है। यह एक प्रकार से व्यवसायिक आय है। सरकार जनता के लिए कुछ कार्य ऐसे करती है, जिन्हें आदमी अलग-अलग नहीं कर सकते, या जिन के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। ये कार्य सरकार के मुख्य कार्यों में से नहीं होते, गौण होते हैं। जो व्यक्ति इन कार्यों से लाभ उठाता है वह उस का मूल्य अर्थात् महसूल या किराया भाड़ा आदि चुकाता है। ये कार्य देश-काल के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ देशों में रेल, जहाज़, नहर, डाक, तार, आदि पर राज्य का अधिकार होता है। रेलों का प्रबंध कहीं तो सरकार स्वयं करती है और कहीं कंपनियों को नियत समय के लिए ठेका दे दिया जाता है। पीछे वे राज्य की हो जाती हैं। कंपनियाँ व्यापारिक ढंग से काम चलाती हैं, अतः साधारणतया मितव्ययिता होती है, परंतु वे जनता के हित का ध्यान कम रखती हैं। यदि पूर्वोक्त व्यापारिक कार्यों से मुनाफ़ा होता हो, तो यह स्पष्ट ही है कि इन कार्यों के संचालन में जितना व्यय

होता है, उस की अपेक्षा प्रजा से धन अधिक वसूल किया जाता है। कुछ लोगों का मत है कि राज्य की यह आय भी कर समझनी चाहिए, क्योंकि यह राज्य के कार्यों में ख़र्च होती है, यदि यह आय न हो, तो राज्य अन्य प्रकार के करों से प्रजा से आय प्राप्त करके अपना कार्य चलाता।

कुछ आदमी इस आय को बहुत अच्छा समझते हैं, कारण कि यह उन लोगों से वसूल की जाती है जो इसे देना सहन कर सकते हैं। परंतु यदि फ़जूल ख़र्ची होती हो या मुनाफ़ा अधिक रहता हो तो यह आय भी प्रजा को बहुत दुसह्य हो जाती है, और इस से व्यापार आदि में बाधा हो सकती है। भारतवर्ष में रेलों और जहाज़ों की कंपनियाँ बहुत पक्षपात करती हैं और यहाँ के कच्चे माल की निर्यात और विदेशी तैयार माल की आयात पर अपेक्षाकृत कम महसूल ले कर उन्हें उत्तेजित करती है, और भारतीय उद्योग-धंधों के लिए घातक होती हैं।

डाक और तार की आमदनी भी इसी प्रकार की है। डाक द्वारा बहुत से आदमी पुस्तकें या अख़बार आदि भी मँगाते हैं, इस लिए इस का शुल्क अधिक होने पर शिक्षा और साहित्य में बाधक होता है। कुछ लोगों का कहना है कि भारतवर्ष में कार्ड और लिफ़ाफे का मूल्य अन्य देशों की अपेक्षा कम है, परंतु यहाँ के जन-साधारण की आर्थिक स्थिति का विचार कर लेने पर उक्त कथन भ्रमपूर्ण सिद्ध हो जाता है।

फ़ीस या शुल्क—यह न्याय, शिक्षा, रजिस्टरी करने या पेटेंट देने आदि कुछ विशेष कार्यों के लिए सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से लिया हुआ धन है। यह उसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह से लिया जाता है, जो उक्त किसी कार्य से लाभ उठाना चाहता है। इस का 'अनिवार्य रूप' समझने के लिए जानना चाहिए कि यदि किसी व्यक्ति को कोई अदालती डिग्री सरकार से मान्य करानी है तो उसे किसी ऐसी अदालत में ही अपने मुक़द्दमे का फ़ैसला कराना होगा जो सरकार द्वारा स्थापित या अनुमोदित हो। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की शिक्षा

संबंधी डिग्री सनद या डिप्लोमा सरकार तभी मान्य करती है, जब कि उस ने सरकारी या सरकार-संबद्ध संस्था में शिक्षा पाई हो, या परीक्षा दी हो। इस लिए शिक्षा-संबंधी योग्यता को सरकार से मान्य कराने के लिए उक्त संस्थाओं की फ़ीस या शुल्क देना अनिवार्य है। साधारणतया इस का परिमाण किए हुए कार्य की तुलना में कम रहता है। उदाहरण के लिए एक स्कूल के चलाने में जितना खर्च पड़ता है, उस स्कूल में पढ़नेवालों की फ़ीस उस अनुपात से कम ही रहती है। भारतवर्ष में न्याय-शुल्क ख़र्चे की अपेक्षा कहीं अधिक है, इस से सरकार को काफ़ी आय होती है।

करों के संबंध में आगे लिखा जायगा। उन में और फ़ीस में यह अंतर है कि कर उन कामों के वास्ते लिए जाते हैं, जिन का संबंध व्यक्ति विशेष से न हो, जो सब के लिए समान-रूप से लाभदायक समझे जाते हों; इस के विपरीत, फ़ीस केवल उन व्यक्तियों से ली जाती है, जो फ़ीस के उपलक्ष्य में प्रत्यक्ष रूप से लाभ उठाते हैं।

कर—आज कल राज्यों की अधिकांश आय करों द्वारा ही प्राप्त होती है। भिन्न-भिन्न लेखकों ने समय-समय पर 'कर' की परिभाषा पृथक्-पृथक् की है। साधारणतया निम्नलिखित परिभाषा की जा सकती है—"कर, सार्वजनिक अधिकारियों को सरकार के उन कार्यों के लिए बाध्य-रूप से दिया हुआ धन है, जो सार्वजनिक हित के लिए किए जाँय, किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के लाभ के लिए नहीं।"

इस परिभाषा में निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं—

१—सार्वजनिक अधिकारियों में केंद्रीय, प्रांतीय एवं स्थानीय सब अधिकारी सम्मिलित हैं। अतः देहातों या क़स्बों से स्थानीय कार्यों के लिए लिया हुआ धन भी कर है।

२—जो धन लिया जाता है, वह सार्वजनिक हित के लिए ख़र्च किए जाने के लिए है, किसी व्यक्ति-विशेष या जाति-विशेष अथवा

समाज-विशेष के स्वार्थ-साधन के लिए नहीं। राज्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह इस विषय में पक्षपात से काम न ले और किसी विशेष समुदाय के लिए बहुत-सा धन न उड़ा दे। बहुधा स्वाधीन देशों में भी राज्य अपनी धनी या धर्माधिकारी (पुरोहित आदि) प्रजा के प्रभाव में रहता है। फिर पराधीन देशों का तो कहना ही क्या, उन में तो राज्य का पदे-पदे शासक जाति से प्रभावित होना संभव है।

निस्संदेह देश में ऐसे काम बहुत कम होते हैं जिन से उस के प्रत्येक व्यक्ति को लाभ हो; परंतु यदि किसी कार्य से अधिकांश जनता का हित हो और उस से लाभ उठाने में शेष जनता के लिए कोई बाधा न हो तो उस काम को सार्वजनिक कह सकते हैं। इस के विपरीत, यदि किसी कार्य से बहुत थोड़े-से आदमियों का हित होता हो, शेष उस का उपयोग न कर सकें, और उन के लिए राज्य ने वैसा कोई दूसरा कार्य भी नहीं करा रक्खा हो, तो इस कार्य को सार्वजनिक कहना जनता को धोखा देना है। हाँ, निर्धन रोगी और अंगहीन प्रजा की रक्षा का कार्य सार्वजनिक माना जाता है।

कोई कार्य सार्वजनिक है या नहीं, इस बात की जाँच करने का यह एक स्थूल नियम दिया गया है, परंतु कभी-कभी बड़ी जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है। सुयोग्य न्यायाधीश ही अच्छी तरह निर्णय कर सकते हैं कि कौन-सा कार्य सार्वजनिक है और कौन-सा नहीं, इस लिए यह निर्णय करने का काम उन्हीं पर रहना चाहिए। भारतवर्ष में और तो और, ईसाई धर्म-संबंधी (एक्लेज़िएस्टिकल) खर्च भी प्रति वर्ष सार्वजनिक माना जाता है और व्यवस्थापक-सभा उस पर अपना मत नहीं दे सकती।

३—कर, अंततः व्यक्तियों या व्यक्ति-समूहों से ही लिए जाते हैं। भोजन, वस्त्र आदि के कर कहने को तो पदार्थों पर लगाए जाते हैं, परंतु

इन के चुकानेवाले होते हैं, व्यक्ति या व्यक्ति-समूह ही।

४—'बाध्य-रूप से' कहने से अभिप्राय यह है कि कर देने में व्यक्ति या व्यक्ति-समूह स्वतंत्र नहीं है। वे किसी निश्चित कर को देना चाहें या न चाहें, उन्हें वह देना ही पड़ेगा। जब राज्य प्रजा के यथेष्ट प्रतिनिधियों द्वारा पूर्ण-रूप से नियंत्रित हो तो इस में विशेष अनौचित्य भी नहीं। परंतु जब कोई कर इस तरह का है, जिसे देश के बहुत से आदमी पसंद नहीं करते, या जब कर से वसूल किया हुआ रुपया इस प्रकार व्यय होता है कि प्रजावर्ग के बहुत से आदमी उस के विरोधी हों, तो यह बाध्यता खटकती है।

विदित हो कि आधुनिक काल में कर अनिवार्य करने में मूल उद्देश्य यह है कि कर का भार सब पर समान रूप से पड़े। यदि किसी आदमी को इस से मुक्त कर दिया जावे तो उस के हिस्से का कर-भार दूसरों पर पड़ेगा; इस लिए प्रत्येक समर्थ व्यक्ति से कर अनिवार्य रूप में ही लेना न्यायानुमोदित है।

५—'धन' से यहां अभिप्राय केवल प्राकृतिक या भौतिक पदार्थों से ही नहीं। अनिवार्य-रूप से सैनिक सेवा या बेगार लेना अथवा अन्य कार्य करना भी पहले चिरकाल तक कर का ही एक स्वरूप माना गया है। अब भी युद्ध-काल में सैनिक-सेवा लिया जाना न्याय-विरुद्ध नहीं समझा जाता। हाँ, साधारण परिस्थिति में भी अनेक स्थानों में जो बेगार ली जाती है, वह सर्वथा अनुचित और न्याय-विरुद्ध है।

विशेष वक्तव्य—स्मरण रहे कि 'कर' प्रजा से वसूल किए जाते हैं, और प्रजा के लिए वसूल किए जाते हैं। अतः प्रजा को वह जानने का अधिकार है कि करों के रूप में जो धन राज्य संग्रह करता है, वह किन-किन कार्यों में व्यय किया जाता है।

राज्य-कर का आधार संपत्ति पर लोगों का व्यक्तिगत अधिकार होना

है। यदि समस्त पदार्थों पर राज्य का ही स्वामित्व हो, तो व्यक्तिगत आय न हो, फिर करों की भी ज़रूरत न रहे; कारण उस दशा में सब आय सरकार की होगी, वही सब प्रकार का ख़र्च भी करेगी। उसी में उन कार्यों के लिए किया हुआ ख़र्च भी आ जायगा, जिन के लिए वह कर लेती है।

राज्य की आय के साधनों संबंधी प्रारंभिक बातों का वर्णन कर चुकने पर, अब अगले परिच्छेद में इस विषय पर विचार किया जायगा कि कर निर्धारित करने के नियम क्या हैं, और उन का किस प्रकार अथवा कहां तक पालन होता है। आय के अन्य साधनों के विषय स्पष्ट ही हैं, उन के संबंध में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

———

नवां परिच्छेद

कर-संबंधी सिद्धांत

प्राक्कथन—हम पहले कह आए हैं कि चिरकाल से राजा लोग अपनी प्रजा से कर लेते रहे हैं। देश की भिन्न-भिन्न परिस्थिति के अनुसार कर-संबंधी नीति बदलती रही है। आधुनिक अर्थशास्त्र-वेत्ताओं ने इस विषय का विशेष विचार अठारहवीं शताब्दी के अंत में किया है।

आडम स्मिथ के नियम—कर लगाने के संबंध में अर्थशास्त्र के प्रवर्तक मि० आडम स्मिथ के चार नियम प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन की व्याख्या में बहुत विद्वानों का भिन्न-भिन्न तर्क होता है और उन्हें पूर्णतः पालन करना कठिन है, तथापि इन के समुचित विवेचन से राजा और प्रजा दोनों का लाभ है, कर-दाताओं पर न्यूनतम भार पड़ता है और राज्य को अधिकतम आय प्राप्त हो जाती है। अतः पहले इन नियमों को जान लेना उपयोगी होगा।

पहला नियम; समानता—"प्रत्येक राज्य के आदमियों को राज्य की सहायता के लिए यथा-संभव अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुपात में कर देना चाहिए, अर्थात् उस आय के अनुपात में कर देना चाहिए जो राज्य-संरक्षण में उन में से प्रत्येक को प्राप्त है।"

उपर्युक्त नियम का आशय यह है कि कर इस प्रकार निर्धारित किए जायँ कि प्रत्येक कर-दाता को समान स्वार्थ-त्याग करना पड़े। भिन्न-भिन्न आदमियों को कर देने में जो कष्ट अनुभव होता है, उस की ठीक-ठीक माप बहुत कठिन है; इस लिए कर को इस प्रकार ठहराना कि सब को

समान कष्ट हो, बहुत कठिन है। संसार में अपवाद तो प्रायः हर एक बात में मिल जाते हैं, तथापि अधिकांश आदमियों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि केवल जीवनोपयोगी पदार्थों के प्राप्त करने के ही योग्य आय रखनेवाले को कुछ त्याग करने में बहुत कष्ट होता है, और उस से अधिक आयवाले आदमी को उतना ही त्याग करने में अपेक्षाकृत कम कष्ट होता है। उदाहरणार्थ दो परिवारों में पाँच-पाँच आदमी हैं उन में से एक परिवार की वार्षिक आय दो हज़ार रुपए है (जो उस के जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक समझी जाती है) और दूसरे परिवार की, इस से अधिक, दृष्टांतवत् चार हज़ार रुपए है। यदि दोनों परिवारों को कर-स्वरूप ३०।३० रुपए राज्य-कोष में देने पड़ें तो कर की मात्रा प्रकट में बराबर दीखने पर भी पहले को कर-भार बहुत अधिक मालूम होगा। अच्छा, यदि दो हज़ार रुपए की आय वाले पर तीस रुपया और चार हज़ार रुपए की आय वाले पर साठ रुपया कर रहे, तो क्या दोनों को कर-भार समान प्रतीत होगा? संभवतः चार हज़ार रुपए की आयवाले परिवार को साठ रुपया देना इतना न अखरे, जितना दो हज़ार रुपए की आयवाले परिवार को तीस रुपया देना अखरता है; क्यों कि चार हज़ार रुपए की आयवाला अपनी विलासिता की एकाध सामग्री के उपभोग का त्याग करके अपना कर चुका सकता है; इस के विपरीत, दो हज़ार वाले को अपनी जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं में कमी करनी पड़ती है।

इस विचार से कर वर्द्धमान होना चाहिए; अर्थात् कर-दाता की आय जितनी अधिक हो, उस पर कर उतनी ही अधिक ऊँची दर से लगे। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ही कर वर्द्धमान हो, विविध प्रकार के सब करों को मिला कर हिसाब लगाने में ही इस नियम का व्यवहार किया जा सकता है। बहुत से उदाहरणों में ग़रीब लोगों पर जीवनोपयोगी पदार्थों का कर तो अमीर लोगों के समान ही पड़ता है, परंतु अमीरों पर विलासिता के पदार्थों का कर ज़्यादा होने से, उन से लिए हुए कुल करों

का योग ऊँची दर से वसूल किया हुआ सिद्ध होता है।

मि० आडम स्मिथ ने इस नियम में कहा है कि आदमियों को अपनी उस आय के अनुपात में कर देना चाहिए, जो राज्य-संरक्षण में उन्हें पृथक्-पृथक् प्राप्त है। इस से यह ध्वनि निकलती है कि आदमियों को राज्य से जितना लाभ पहुँचता है, उस के बदले में उसी अनुपात से उन्हें राज्य को कर देना चाहिए। इस विषय में बहुत वाद-विवाद हुआ है। मि० वाकर का कथन है कि राज्य-संरक्षण से अधिकतर लाभ तो दुर्बल और रोगी आदि पाते हैं और ये लोग राज्य-संरक्षण के अनुपात से कर देने में सर्वथा असमर्थ हैं। साथ ही यह हिसाब लगाना भी तो बहुत कठिन है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की जान और माल का राज्य द्वारा कितना संरक्षण होता है। इस प्रकार इस नियम के इस अंश के अनुसार व्यवहार होना दुस्साध्य है।

अब तनिक यह विचार करें कि कर की मात्रा कर-दाता की आय के अनुपात से होने की बात भारतवर्ष में कहाँ तक चरितार्थ होती है। यह सर्व-विदित है कि भारतीय किसान पर भू-कर का भार इतना अधिक होता है कि बेचारे के पास अपने जीवन-निर्वाह के लिए भी खाने-पहिनने की सामग्री नहीं बचती, उसे अपनी आयु-पर्यंत ऋण-ग्रस्त रहना होता है, तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिए अधिकाधिक ऋण को विरासत में छोड़ना पड़ता है।

किसानों से दूसरे दर्जे पर, अधिक कर-भार नगर में रहने वाले निर्धन व्यक्तियों पर रहता है, इन्हें नमक आदि अपनी जीवन-निर्वाह की वस्तुओं पर कर देना पड़ता है, इस से ये प्रायः उक्त वस्तुओं को यथेष्ट मात्रा में प्राप्त ही नहीं कर पाते।

सब से कम कर-भार होता है ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों आदि उन

धनी या माध्यमिक श्रेणी के व्यक्तियों पर जो किसानों द्वारा उत्पन्न कृषि-आय को प्रायः बिना कुछ भी श्रम किए प्राप्त करते रहते हैं।

इन से दूसरे दर्जे पर, कम कर-भार मध्य श्रेणी के ग़ैर-कृषकों अर्थात् साहूकार या महाजनों पर है, जो देहातों में रहते हैं।

इस प्रकार भारतवर्ष की कर-प्रणाली पूर्वोक्त समानता के सिद्धांत के विचार से बहुत दूषित है। इस में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। भू-कर को काफ़ी घटाने, या उस की जगह भूमि की आमदनी से भी अन्य आय की भाँति आय-कर लेने, नमक-कर को बिल्कुल हटाने, साहूकारों की बड़ी आय पर विशेष कर लगाए जाने आदि अनेक बातों की ज़रूरत है।

दूसरा नियम; स्पष्टता और निश्चितता—"किसी व्यक्ति को जो कर देना पड़े वह निश्चित हो, अंधाधुंध न हो। कर देने वाले तथा अन्य आदमियों को कर देने का समय और कर की मात्रा स्पष्ट-रूप से मालूम होनी चाहिए।"

यह नियम समझना आसान ही है। कर देने का समय और कर की मात्रा, कर वसूल करनेवाले की इच्छानुसार बदल जाना उचित नहीं है। यदि कर की मात्रा स्पष्ट और निश्चित न रहेगी तो अधिकारी कुछ अधिक कर वसूल करके स्वयं खा सकता है। पुनः यदि कर देने का समय पहले से मालूम न हो तो कर-दाता अपने कर की रक़म समय पर तैयार न रख सकेगा और अधिकारियों का समय वृथा नष्ट होगा।

इस स्पष्टता-संबंधी नियम के अनुसार प्रत्येक कर प्रत्यक्ष होना चाहिए। परोक्ष कर कोई रहे ही नहीं। प्रत्यक्ष और परोक्ष करों का विवेचन अगले परिच्छेद में किया जायगा। परंतु आज-कल प्रत्येक राज्य कुछ न कुछ परोक्ष कर लेता ही है। इंगलैंड में लगभग ४० फ़ी सदी

कर परोक्ष होता है, भारत में तो और भी अधिक। इस नियम का यह भी आशय है कि राज्य, प्रजा से किसी प्रकार का उपहार या भेंट आदि न ले, क्यों कि वह परोक्ष कर में गिना जायगा।

तीसरा नियम; सुविधा—"प्रत्येक कर ऐसे समय में और ऐसी विधि से वसूल किया जाना चाहिए कि कर देनेवालों को अधिकतम सुविधा हो।"

इसी नियम के अनुसार बहुधा पदार्थों की थोक जिंसों पर हो कर लगाया जाता है, फुटकर जिंसों पर नहीं, क्योंकि इस से उस के एकत्र करने में बहुत असुविधा होती है।

यद्यपि अंततः प्रत्येक पदार्थ पर लगाया हुआ कर उस पदार्थ के उपभोक्ता पर पड़ता है, तथापि यदि कर उपभोक्ता से लिया जाय तो एक तो वह फुटकर-रूप में वसूल करना बहुत कठिन होगा; दूसरे संभव है, कर का प्रत्यक्ष अनुभव कर के कुछ उपभोक्ता उस पदार्थ को ख़रीदें ही नहीं। इस लिए पदार्थों पर लगाया हुआ कर उपभोक्ताओं से न लिया जाकर थोक दूकानदारों (बेचने वालों) से वसूल कर लिया जाता है।

प्रत्येक कार्य किसी ख़ास समय में ही बड़ी सुविधा से हो सकता है। ख़ास समय पर ही कर देने में बहुत सुविधा होती है। किसानों को लगान देने की सुविधा उस समय होती है जब उन की फ़सल तैयार हो कर उपज संग्रह कर ली जाय।

चौथा नियम; मितव्ययिता—"प्रत्येक कर इस प्रकार लगाया जाना चाहिए कि राज्य-कोष में आने वाली रक़म से ऊपर कर-दाताओं के पास से न्यून से न्यून धन लिया जावे।"

इस का आशय यह है कि प्रजा से वसूल की हुई कर की आमदनी का अधिक से अधिक भाग सरकारी ख़ज़ाने में जमा हो जाय; अर्थात्

कर वसूल करने का ख़र्च कम से कम हो, बहुत अधिक अधिकारियों को केवल इसी काम के लिए न रखना पड़े।

इंगलैंड में कर वसूल करने का ख़र्च कुल आय का केवल तीन फ़ी सदी से अधिक नहीं होता। परंतु भारतवर्ष में यह पाँच फ़ी सदी से भी अधिक हो जाता है। इस के दो कारण हैं :—(क) यहाँ बहुत से आदमियों से थोड़ा-थोड़ा कर वसूल करना होता है, जब कि इंगलैंड आदि अन्य देशों में थोड़े से आदमियों से बहुत अधिक कर वसूल हो जाता है। (ख) यहाँ कर वसूल करनेवाले उच्च अधिकारियों का वेतन बहुत अधिक है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उच्च पदों पर भारतवासियों की नियुक्ति हो और वेतन का परिमाण साधारण हो। इस से इस मितव्ययिता के नियम का सम्यक् पालन हो सकता है।

पूर्वोक्त नियम के अंतर्गत यह बात भी आ जाती है कि कर प्रायः देश के कच्चे पदार्थों पर न लगाया जा कर बिक्री के लिए तैयार किए हुए माल पर ही लगना चाहिए। उदाहरण के लिए, कर रूई पर न लगा कर उस के बने हुए कपड़े आदि पर लगाना अच्छा होगा। कपड़ा बनने तक रूई कई सौदागरों के हाथों से गुज़रती है। यदि रूई पर कर लगा तो कर-दाताओं को तो बहुत हानि होगी और सरकारी कोष में रुपया कम पहुँचेगा। कल्पना करो कि "क" ने रूई पर १००० रु० कर दिया तो जब वह इसे "ख" को बेचेगा तो अपनी रूई पर लगी हुई रक़म और उस का मुनाफ़ा लेने के अतिरिक्त यह १००० रुपए की रक़म और इस का सूद भी लेगा। यदि सूद की दर दस फ़ी सदी हुई तो वह "ख" से सूद-सहित ११०० रु० और लेगा, इसी प्रकार "ख" अपने ग्राहक "ग" से १२१० रु० और लेगा। इस तरह असली कर की रक़म पर चक्रवृद्धि ब्याज (सूद पर सूद) लगता रहेगा। संभव है, अंतिम ग्राहक को २००० रु० के लगभग और देने पड़ें, जब कि सरकारी ख़ज़ाने में केवल एक

हज़ार रुपए ही पहुँचे हैं। इसे बचाने का उपाय यही है कि कच्चे पदार्थों पर कर न लगाए जाने का नियम हो, और कर केवल तैयार माल पर ही लगाया जावे।

स्मरण रहे यह बात हम ने देश के आंतरिक व्यापार के संबंध में ही कही है। निर्यात के कच्चे पदार्थों पर कर लगाया जाना बहुत लाभकारी होता है, उस से देश के उद्योग-धंधों को उत्तेजना मिलती है।

कुछ अन्य नियम—मि० आडम स्मिथ के नियमों का वर्णन हो चुका। इन के अतिरिक्त कुछ अन्य विचारनीय नियम ये हैं:—

१—करों की संख्या अधिक होने से उन का भार अपेक्षाकृत कम मालूम पड़ता है, यदि अधिक आय प्राप्त करनी हो तो करों की संख्या बढ़ाना उत्तम होगा। तथापि बहुत छोटे-छोटे करों का लगाया जाना उचित नहीं, उन के वसूल करने में ख़र्च और परिश्रम बढ़ेगा। किसी एक कर का भार भी इतना अधिक न हो कि वह असह्य हो चले।

२—कर निर्धारित करने का सब से अच्छा ढंग वह है जो यथेष्ट लोचदार हो, जो देश की सुख-समृद्धि की वृद्धि के साथ करों से होने वाली आय को बढ़ा दे और उस के कम होने के साथ इसे घटा दे। कर सदैव देश-काल की परिस्थिति के अनुसार घटते-बढ़ते और बदलते रहने चाहिए।

उत्तम कर—जिस कर से बचा नहीं जा सकता, जो दूसरे पर डाला नहीं जा सकता, जो सामर्थ्य के अनुसार वसूल किया जाता है, जिसे देने में सुभीता हो, वह कर कर-दाता की दृष्टि से उत्तम समझा जाता है।

जिस कर का उद्योग-धंधों पर अनुचित दबाव नहीं पड़ता, जिस में किसी उद्योग-धंधे का पक्षपात नहीं होता, जिस से धन-वितरण की

समस्या बढ़ने के स्थान में घटे, जिस की रक़म ख़र्च करने से सामूहिक लाभ उस दशा की अपेक्षा अधिक हो जब कि वह पृथक् ख़र्च किया जाय, ऐसा कर समाज की दृष्टि से उत्तम होता है।

राज्य की दृष्टि से जो कर परिमाण में सुनिश्चित हो जिस के वसूल करने में मितव्ययिता में हो, जिस के लगने का समय निश्चित हो, और जिस से आय होती हो. ऐसा कर उत्तम होता है।

दसवाँ परिच्छेद

करों के भेद

पिछले परिच्छेद में कर-संबंधी सिद्धांतों का विवेचन हो चुका है। अब हम करों के भेद आदि कुछ अन्य आवश्यक बातों पर विचार करते हैं।

एकाकी कर (सिंगल टैक्स)—आजकल साधारण आदमी भी यह जानते हैं कि कर कई प्रकार के होते हैं, और एक ही कर से काम नहीं चल सकता। तथापि समय-समय पर कुछ महाशय एकाकी कर के पक्ष में रहे हैं। इस में कई दोष हैं। इस से होनेवाली आय सुगमता-पूर्वक नहीं बढ़ाई जा सकती। जिस श्रेणी के पदार्थों या जिस प्रकार की आय पर यह कर लगाया जाय, यदि उस से यथेष्ट धन-संग्रह न हो तो किसी दूसरी जगह से उस की पूर्त्ति करने की सुविधा नहीं होती। इस प्रणाली से उद्योग-धंधों की उन्नति के लिए या मादक पदार्थों का व्यवहार कम करने के लिए विविध प्रकार के कर नहीं लगाए जा सकते। दरिद्र और समृद्ध जनता से एकाकी कर उचित मात्रा में वसूल नहीं किया जा सकता। अस्तु, यह प्रणाली व्यवहार में लाना अत्यंत असुविधा-जनक है।

आधुनिक राजस्व-नीति में यह विचार रक्खा जाता है कि करों से राज्य को आमदनी तो यथेष्ट हो जावे, परंतु कर देने वालों को करों का भार यथा-संभव कम प्रतीत हो। इस विचार से दो प्रकार के कर लगाए जाते हैं, (१) प्रत्यक्ष (डाइरेक्ट) कर और (२) परोक्ष (इनडाइरेक्ट) कर।

प्रत्यक्ष कर—वह कर प्रत्यक्ष कर कहा जाता है, जो उसी आदमी से लिया जाता है, जिस पर उस का बोझ डालना अभीष्ट हो। यह कर देते समय कर-दाता यह भली भाँति जान लेता है कि उस ने अपनी आय में से इतना रुपया इस रूप में सरकारी कोष में दिया, अथवा आय के अमुक अनुपात में सरकार को सहायता पहुँचाई। उदाहरण के लिए ज़मीन का लगान, आय-कर तथा जायदाद या पूँजी पर कर प्रत्यक्ष कर हैं।

मालगुज़ारी—यह कर सब करों से प्राचीन है। राज्य की आय का पहले यही प्रधान साधन था। व्यवसाय-हीन देशों में अब भी इस का बड़ा महत्व है। कहीं-कहीं तो कर की मात्रा ज़मीन की उपज के एक निश्चित अनुपात से ली जाती है और कहीं-कहीं वह भूमि के क्षेत्रफल के हिसाब से लगाई जाती है। इन में पहली प्रकार की आय भूमि की उपज के अनुसार घटाई-बढ़ाई जा सकती है, दूसरी नहीं। कभी-कभी ऐसा भी किया जाता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की फ़सलवाली भूमि पर, क्षेत्रफल के अनुपात से कर की दर अलग-अलग निश्चित कर दी जाती है। ज़मीन पर लगाया हुआ कर उस के मालिक पर ही पड़ता है, वह इसे किसी और पर नहीं डाल सकता। इस कर के कारण वह अपनी भूमि से उत्पन्न अन्न आदि पदार्थ का मूल्य नहीं बढ़ा सकता, क्योंकि यह चीज़ें तो बाज़ार भाव से बिकेंगी।[१]

---

[१] पदार्थों का भाव अंततः ऐसी निकृष्ट भूमि के उत्पादन-व्यय के अनुसार निश्चित होता है, जिस में खेती करने से खर्च और मज़दूरी आदि ही निकलती है, और कुछ मुनाफ़ा नहीं रहता। उक्त उत्पादन-व्यय बाज़ार भाव से कम नहीं होगा, क्योंकि यदि ऐसा हो तो उस से भी खराब भूमि में खेती होने लगे। उत्पादन-व्यय बाज़ार भाव से अधिक भी नहीं रह सकता, क्योंकि नुक़सान उठा कर चिरकाल कौन खेती करेगा?

आय-कर—यह कर विशेषतया मुनाफ़े या वेतन पर लगता है। मुनाफ़े की आय पर कर लगाने में बड़ी असुविधा यह होती है कि यह आय निश्चित नहीं होती। इस लिए इस कर की रक़म बदलती रहनी चाहिए, परंतु यह है कठिन। अतः बहुधा ऐसा हो जाता है कि किसी पर तो यह कर आवश्यकता से अधिक लग जाता है और किसी पर कम। यह कर, कर-दाता पर ही पड़ता है, परंतु इस कर के कारण पूँजी की वृद्धि में बाधा होती है और इस बात का असर मज़दूरी पर पड़ता है।

मज़दूरी पर लगा हुआ कर मज़दूरों को देना होता है, परंतु कभी-कभी वे इस कर के लगाने से अपनी मज़दूरी बढ़वा कर अंततः इसे अपने मालिकों पर डाल सकते हैं। इस दशा में उस का प्रभाव मुनाफ़े पर पड़ेगा।

थोड़ी-थोड़ी मज़दूरी पानेवालों पर कर लगाने से उसे वसूल करने में बड़ी असुविधा होती है। प्रायः यह सिद्धांत माना जाता है कि जितनी आमदनी जीविका-निर्वाह के लिए आवश्यक समझी जाय, उस पर कर न लगाया जाय। ब्रिटिश भारत में अब दो हज़ार रुपए से कम वार्षिक आय पर कर नहीं लगाया जाता। हाँ, इतनी या इस से अधिक आय होने पर पूरी आय पर कर लगता है, यह नहीं कि जितनी इस से अधिक हो उसी पर लगे। अस्तु, इस प्रकार साधारण मज़दूरी (वेतन) पाने वालों पर यह कर लगने का प्रसंग नहीं आता, किंतु उन्हें खाने-पहिनने के बहुत से पदार्थों पर विविध कर देने पड़ते हैं।

पहले यह बता चुके हैं कि सब करों की कुल मात्रा वर्द्धमान होनी चाहिए, अर्थात् किसी आदमी की आमदनी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाय, उस पर कर की कुल मात्रा का अनुपात भी बढ़ता जाय। पृथक्-पृथक् कर की

दृष्टि से यह बात सब से अधिक आय-कर के संबंध में निभाई जाती है।

जायदाद और पूँजी पर कर—यह कर लगाना बहुधा बहुत कठिन होता है। स्थिर जायदाद के मूल्य का अनुमान करने में तो विशेष असुविधा नहीं होती, परंतु अस्थिर को मालियत का अनुमान करना दुस्तर है। लोग छल-कपट से इस के कर से बचने के लिए इसे छिपा लेते हैं। इस लिए भूमि और मकान के अतिरिक्त यह कर मृत्यु-कर या विरासत कर के स्वरूप में ही लगाया जाता है। जब किसी आदमी की जायदाद उस के मरने पर उस के उत्तराधिकारी को मिलती है और उस पर कर लगाया जाता है, तो उस को मृत्यु-कर (डेथ ड्यूटी) या विरासत-कर (सक्सेशन ड्यूटी) कहते हैं। यह प्रायः बहुत हल्का और क्रमशः वर्द्धमान रक्खा जाता है। यह उन आदमियों पर पड़ता है, जो उस जायदाद के उत्पादक नहीं हैं, जिस पर कर लगाया जाता है, इस लिए यह उन्हें बहुत अखरता नहीं। यह कर जिस किसी पर लगाया जाता है, प्रायः उसी को देना होता है, वह इसे हटा कर किसी और पर नहीं लगा सकता। परंतु जब यह कर किसी ऐसी जायदाद या पूँजी पर लगे, जो उधार दी जा सके तो यह बहुधा ऋण लेने वालों पर पड़ता है।

यदि पूँजी पर भारी कर लगा दिया जाय तो लोगों में संचय के प्रति निरुत्साह, अथवा अपनी संचित पूँजी को विदेशों में लगाने का अनुराग हो सकता है। इस से देश में पूँजी की कमी होकर उद्योग धंधों को धक्का पहुँचेगा।

परोक्ष कर—परोक्ष कर उस कर को कहा जाता है, जिस को उसे चुकाने वाले औरों पर डाल देते हैं। व्यापारी आयात और निर्यात पर जो महसूल देते हैं, उसे माल बेचने के समय वह अपने ग्राहकों से वसूल कर लेते हैं। व्यवहारोपयोगी चीज़ें, कपड़े, नमक, शराब, अफ़ीम आदि के कर सभी परोक्ष कर हैं। ये कर देते समय लोगों को प्रत्यक्ष कष्ट नहीं

होता। परंतु सरकार को इन के व्यापार-व्यवसाय के लिए तरह-तरह के नियम बनाने पड़ते हैं; यथा, किस रास्ते से व्यापार का माल जाना चाहिए, किस जगह उसे बेचना चाहिए, किस रीति से व्यापार होना चाहिए, किस चीज़ को कौन व्यक्ति बनाए, अथवा किस स्थान पर और कितनी मात्रा में बनाए, इत्यादि।

आयात-निर्यात कर—आयात-निर्यात के पदार्थों के दो भेद होते हैं:—जीवनोपयोगी, और विलासिता के। इस प्रकार आयात-निर्यात कर दो प्रकार के होते हैं :—

(क) जीवनोपयोगी पदार्थों पर कर।

(ख) विलासिता के पदार्थों पर कर।

जीवनोपयोगी पदार्थों पर लगाए हुए कर उपभोक्ताओं पर पड़ते हैं। दरिद्र से दरिद्र आदमी भी इन करों से बच नहीं सकता। इस लिए बहुत से अर्थशास्त्र-वेत्ताओं की राय है कि यथा-संभव यह कर न लगाए जावें। इन से पदार्थों का मूल्य चढ़ जाता है और निर्धनों का कष्ट बढ़ जाता है।

विलासिता के पदार्थों पर लगे हुए करों में यह बात नहीं होती। इन पदार्थों के खरीदने वाले प्रायः अमीर लोग होते हैं, जो कर को सुगमता-पूर्वक सहन कर सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब इन पदार्थों पर कर अधिक बढ़ जाते हैं तो मध्यम श्रेणी के आदमी इन का उपभोग कम कर देते हैं। इससे इन पदार्थों की उत्पत्ति कम हो जाती है। ये कर कुछ अंश में उपभोक्ताओं पर, और कुछ अंश में उत्पादकों पर पड़ते हैं।

आयात-निर्यात कर लगाने के दो उद्देश्य हो सकते हैं, (१) कर का भार विदेशियों पर पड़े, और (२) विदेशी माल की आयात घटाकर स्वदेशी उद्योग धंधों की उन्नति की जाय। इस दूसरे उद्देश्य को ध्यान में रख कर जो कर निर्धारित किए जाते हैं, वे संरक्षक कर कहलाते हैं; ऐसे

व्यापार को संरक्षित व्यापार, और ऐसी व्यापार नीति को संरक्षण नीति कहते हैं। इस के विपरीत जब विदेशी व्यापार पर कर लगाने से केवल आय प्राप्त करना ही अभीष्ट हो (विदेशी आयात को कम करना नहीं), उस व्यापार को मुक्त-द्वार व्यापार कहते हैं।

आयात माल में केवल उन्हीं तैयार पदार्थों पर कर लगाना विशेष लाभकारी हो सकता है जिन के बनाने के साधन अपने यहाँ मौजूद हों, और जिन के तैयार करने में अभी नहीं, तो कुछ समय पीछे, लाभ होने की संभावना अवश्य हो। इस कर का भार साधारणतया अपने ही देश पर पड़ता है, तथापि यदि विदेशी माल जीवनोपयोगी नहीं है, और स्वदेश के कुछ अच्छी संख्या के आदमी उस के बिना निर्वाह कर सकते हैं, तो कर लगाने से जब वह माल मँहगा होगा, तो उस की मांग एवं आयात कम हो जायगी। ऐसी दशा में आयात माल पर लगे हुए कर का प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा। उदाहरणवत् भारतवर्ष में बहुत सा विदेशी माल ऐसा ही आता है जिस के बिना यहाँ आदमियों को अपने जीवन-निर्वाह में विशेष असुविधा नहीं होती, या जो यहां तैयार किया जा सकता है। ऐसे विदेशी माल पर—सूत रुई के कपड़े, शक्कर, लोहे फ़ौलाद के सामान की आयात पर—भारी कर लगाना चाहिए जिससे वह यहाँ तैयार किए हुए वैसे सामान से मँहगा पड़े, और इस देश में स्वदेशी को उत्तेजना मिले।

निर्यात कर विदेशियों पर पड़ते हैं। ये कर उन्हीं वस्तुओं पर सफलता-पूर्वक लगाए जा सकते हैं, जिन की बाहर वालों को अत्यंत आवश्यकता हो। जिन वस्तुओं की बाहर वालों को अत्यंत आवश्यकता नहीं होती, उन पर कर लगने से विदेशी मांग घट जायगी और कर का प्रभाव निर्यात करने वाले देश पर भी पड़ेगा। भारतवर्ष के रुई और जूट आदि कच्चे पदार्थों की, इंगलेंड के कारख़ाने वालों को अत्यंत आवश्यकता

रहती है और इन पदार्थों की निर्यात पर कर सफलता-पूर्वक लगाया जा सकता है।

देशी माल पर कर—जो देश मुक्त-व्यापार नीति का अवलंबन करता है, अर्थात् विदेशों को जाने वाले या वहाँ से आने वाले माल पर किसी प्रकार की रुकावट नहीं डालता, वह जब आय के वास्ते किसी विदेशी माल पर कर लगाता है तो अपने यहाँ की भी उस प्रकार की वस्तु पर कर लगाता है। इस संबंध में भारतवर्ष की बात का उल्लेख आगे, परोक्ष करों की आय के प्रसंग में, किया जायगा। कुछ देशों में अपने आंतरिक व्यापार के पदार्थों में से केवल विलासिता के पदार्थों पर ही कर लगाया जाता है, जिस से उस कर का भार अमीरों पर ही पड़े। बहुधा नैतिक लक्ष्य भी रक्खा जाता है, और उन मादक अथवा अन्य पदार्थों पर कर लगाया जाता है, जो जनता के स्वास्थ या आचार व्यवहार में बाधक हों।

प्रत्यक्ष करों से लाभ हानि—प्रत्यक्ष करों के मुख्य लाभ ये हैं—

१—इन से प्रत्येक आदमी को ठीक-ठीक मालूम हो जाता है कि उसे राज्य को क्या देना है।

२—इन्हें वसूल करने में परोक्ष कर की अपेक्षा अधिक सुगमता तथा मितव्ययिता होती है।

इन करों से मुख्य हानियाँ निम्नलिखित हैं—

(क) कर दाता को ये कर बुरे लगते हैं।

(ख) साधारणतः सब आदमियों पर, और विशेषतया ग़रीबों पर, प्रत्यक्ष कर लगाना कठिन होता है।

(ग) इन करों से होने वाली आय को घटाने-बढ़ाने की बहुत गुंजाइश नहीं होती।

(घ) यदि ये कर बहुत भारी हों तो इन से लोगों के, बचत करने में, निरुत्साहित होने की संभावना होती है।

परोक्ष करों से लाभ हानि—परोक्ष करों के मुख्य लाभ ये हैं—

१—कर दाता को ये कर बहुत कम अखरते हैं; जब तक कि ये बहुत ज़्यादा न हों। उसे इन का भार मालूम नहीं होता।

२—हर एक आदमी पर उस की सामर्थ्य के अनुसार कर लगाए जा सकते हैं।

३—परोक्ष कर ऐसे समय पर लिए जाते हैं, जो कर-दाताओं को सुविधाजनक हों।

४—इन से होने वाली आय को घटाने-बढ़ाने की विशेष गुंजाइश होती है, और समृद्धि-काल में, जब कि जनता की विविध पदार्थों की मांग बढ़ती है, यह आय स्वयमेव बढ़ जाती है।

इन करों से मुख्य हानियाँ निम्नलिखित हैं—

(क) परोक्ष करों को वसूल करने में कठिनाई और ख़र्च बहुत होता है।

(ख) कुछ पदार्थों पर कर लगाने से किसी उद्योग-धंधे को नुक़सान पहुँचने की संभावना रहती है।

(ग) मँहगी हो जाने की दशा में करों से प्राप्त होने वाली आय में अचानक कमी हो जाने की संभावना होती है।

(घ) करों से बचने के लिए लोगों को माल छिपा कर ले जाने का प्रलोभन अधिक होता है।

मिश्रित करपद्धति—आधुनिक राज्यों में प्रत्यक्ष और परोक्ष करों को समुचित मात्रा में मिला कर ही आय प्राप्त की जाती है। इस पद्धति को मिश्रित करपद्धति कहते हैं। इस से निम्नलिखित लाभ हैं—

१—इस से, प्रत्यक्ष करों से होने वाली अप्रियता कम हो जाती है।

२—परोक्ष करों से उद्योग-धंधों को जो हानि हो सकती है, वह इस पद्धति से कम हो जाती है।

३—इस पद्धति में आय के घटाने-बढ़ाने की गुंजाइश रहती है और कर-दाताओं को विशेष असुविधा पहुंचाए बिना, कर की दर घटाई अथवा बढ़ाई जा सकती है।

कर निर्धारित करने का विषय बड़ा गहन है, अतः इस का निश्चय करने से पूर्व आगे पीछे का भली भाँति विचार कर लेना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, ऐसे कर न लगें जिन से एक ओर तो थोड़ी सी आय होती हो, परंतु दूसरी ओर परोक्ष रूप में सार्वजनिक हित की बहुत हानि हो जाय।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

प्रत्यक्ष करों की आय

भारत वर्ष में प्रत्यक्ष कर, आय-कर और माल-गुज़ारी हैं; आय-कर में सुपर टैक्स भी सम्मिलित है। एक अन्य मुख्य प्रत्यक्ष कर जायदाद या पूंजी पर लगने वाला कर है, यह भारतवर्ष में बहुत कम लगता है।

आय-कर—यह कर सन् १८६० ई० से लगने लगा है। इस कर की दर समय-समय पर बदलती रहती है। यह समझा जाता है कि यहां एक परिवार को अपने निर्वाह के लिए दो हज़ार रुपए तक की आमदनी की आवश्यकता है। अतः इतनी आय पर कर नहीं लगाया जाता। कभी-कभी केवल एक हज़ार रुपए तक की आय ही, कर से मुक्त रही है, परंतु ऐसा होने की दशा में बहुत असंतोष तथा विरोध हुआ है। इस समय (सन् १९३९ ई०) व्यक्तियों, रजिस्ट्री न की हुई फ़र्मों और संयुक्त हिंदू परिवारों की दो हज़ार रुपए से कम की आय पर आय-कर नहीं लगता, दो हज़ार या इस से ऊपर की आय पर कर लगता है, और उस का स्वरूप वर्द्धमान है, अर्थात् जितनी आय अधिक होती है उतनी ही कर की दर बढ़ती जाती है। प्रत्येक कंपनी और रजिस्टरी की हुई फ़र्म से आय-कर एक निर्धारित दर से लिया जाता है। निर्धारित रक़मों से ऊपर की आय पर, व्यक्तियों तथा संयुक्त-हिंदू परिवारों और रजिस्टरी न की हुई फ़र्मों से एक सुपर-टैक्स लिया जाता है, जिस की दर भी वर्द्धमान है। आय कर का वर्द्धमान होना तो सिद्धांत से ठीक ही है, परंतु किसी परिवार की आय पर यह कर लगाते समय उस परिवार के सदस्यों की संख्या का कुछ विचार नहीं किया जाना अनुचित है। उदाहरणवत्, यदि एक परिवार

में एक मनुष्य की आय से, उस के अतिरिक्त उस की स्त्री तथा दो बच्चों का निर्वाह होता है और दूसरे परिवार में कमाने वाले मनुष्य के आश्रित उस की स्त्री और तीन बच्चों के अतिरिक्त उस की विधवा माता, विधवा भावज, तथा एक भतीजा और भतीजी है तो दोनों परिवारों पर, उनकी आय दो-दो हज़ार रुपया या इस से अधिक होने पर आय-कर समान ही लगेगा, यद्यपि एक परिवार में केवल चार व्यक्ति हैं और दूसरे में नौ व्यक्ति हैं। यह सरासर अनुचित है। आय-कर निर्धारण के नियमों में इस दृष्टि से विचार होना आवश्यक है।

सुपर-टैक्स महायुद्ध के समय लगाया गया था। यह अनुमान किया जाता था कि शायद युद्ध के पश्चात् यह बंद हो जाय, परंतु जब कि सरकार का ख़र्च दिन-दिन बढ़ता ही जाता है, तो जो टैक्स एक बार, चाहे विशेष परिस्थिति में ही, लग जाय, उस का फिर घटना तो प्रायः असंभव ही हो जाता है।

भारतवर्ष में आय-कर और सुपर-टैक्स की मद में, सरकार को अपेक्षाकृत बहुत कम आय होती है। जब देश का बहुत सा व्यापार आदि विदेशियों के हाथ में हो तो देश वालों की आमदनी कम होनी ही चाहिए, फिर इस मद में सरकार को ही आय अधिक कहाँ से हो? यहाँ स्वदेशी उद्योग धंधों की उन्नति की बहुत आवश्यकता है। इस विषय पर अन्यत्र प्रसंगानुसार लिखा गया है।

सरकार की इस मद की आय में वृद्धि होने का दूसरा उपाय यह है कि कृषि से होने वाली आय पर भी आय-कर लगे। भारतवर्ष में अनेक ज़मीन्दार, ताल्लुक़ेदार और नवाबों आदि को कृषि से काफी आय है, और उन को प्रायः कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता। इस से उन का जीवन बहुधा आनंदोपभोग में ही बीतता है। यह प्रथा कहाँ तक उचित है, इस संबंध में यहाँ कुछ नहीं कहना है, वक्तव्य केवल यह है कि उन्हें कर

से मुक्त रखने से सरकार बहुत सी आय से वंचित रहती है; उन पर कर लगाया जाना उचित ही है।

मालगुज़ारी—भारतवर्ष में मालगुज़ारी के अंतर्गत निम्नलिखित आय संमिलित हैं:—साधारण मालगुज़ारी, सरकारी इस्टेट की बिक्री, परती ज़मीन की बिक्री, ज़मीन का महसूल तथा अबवाब, और इस विषय की विविध आय।

साधारण मालगुज़ारी में सर्वसाधारण से प्राप्त मालगुज़ारी के अतिरिक्त गत वर्षों की बक़ाया की आमदनी, सरकारी इस्टेट की मालगुज़ारी और जंगल की मालगुज़ारी शामिल होती है।

विविध आय में मुख्य आमदनी, यह होती है—मालगुज़ारी के दफ़्तर की आमदनी, मालगुज़ारी-अदालतों से किया हुआ जुर्माना, कुछ जगहों में ख़ास पटवारी रखने के उपलक्ष्य में होने वाली आमदनी, खेतों की हद ठीक करने के लिए अमीनों की फ़ीस, उन जंगलों या ज़मीनों से खनिज पदार्थों की आय जो जंगल विभाग के प्रबंध में न हों, इत्यादि।

प्रांतीय सरकारों की आमदनी का मुख्य साधन मालगुज़ारी है, बहुधा उन की कुल आय का लगभग आधा भाग इसी से प्राप्त होता है। मालगुज़ारी के संबंध में, ब्रिटिश भारत में तीन तरह का बंदोबस्त है:—(१) स्थाई प्रबंध; बंगाल में बिहार के $\frac{5}{6}$ भाग में, एवं आसाम के आठवें और संयुक्त प्रांत के दसवें भाग में। (२) ज़मींदारी या ग्राम्य प्रबंध, संयुक्त-प्रांत में ३० वर्ष और पँजाब तथा मध्य प्रांत में २० वर्ष के लिए मालगुज़ारी निश्चित कर दी जाती है; गाँव वाले मिलकर इसे चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। (३) रय्यतवारी प्रबंध; बम्बई, सिंध, मदरास, और आसाम में, एवं बिहार के कुछ भाग में; इन स्थानों में सरकार सीधे काश्तकारों से संबंध रखती है। बम्बई और मदरास में ३० वर्ष में तथा अन्य प्रांतों में जल्दी जल्दी बंदोबस्त होता है। नये बंदोबस्त

में प्रायः हर जगह सरकारी मालगुज़ारी बढ़ जाती है।

भारतवर्ष में भूमि से होने वाली आय पर लगने वाली मालगुज़ारी, अन्य प्रकार की आय पर लगने वाले कर के अनुपात से अधिक होती है। पुनः सरकार जो मालगुज़ारी लेती है, वह उपज के रूप में नहीं, वरन् रुपए के रूप में लेती है। वह उस की दर पैदावार का परता लगाकर नियत करती है, यह परता बंदोबस्त के साल का लगाया हुआ होता है। बहुधा ऐसा हो सकता है कि बंदोबस्त के साल-फ़सल अच्छी हो, अथवा कारगुज़ारी दिखाने वाले अफ़सर उस के अनुमान में अत्युक्ति कर दें, और अभागे किसानों पर कितने ही वर्षों के लिए सरकारी मालगुज़ारी का भार बढ़ जाय। अति-वृष्टि, अनावृष्टि आदि से फ़सल ख़राब हो जाने पर जब पैदावार कम हो जाती है, तब भी सरकारी मालगुज़ारी प्रायः पूर्व निश्चय के अनुसार ही देनी पड़ती है। कभी-कभी सरकार मालगुज़ारी का कुछ अंश छोड़ भी देती है, परंतु वह छूट नुक़सान के हिसाब से बहुधा कम होती है।

मालगुज़ारी की अधिकता के कारण अधिकांश भारतीय कृषकों की, जो भारतीय जनता का बृहदंश हैं, इस समय बुरी दशा है; उन का यथेष्ट उद्धार उसी समय होगा, जब उन की ज़मीन उन की ही मौरूसी जायदाद समझी जायगी, और सरकारी मालगुज़ारी सुविचार-पूर्वक निश्चित कर दी जायगी। हमारी समझ से जिस दर से अन्य आय पर कर लिया जाता है, उसी दर से ज़मीन की आमदनी पर कर लगना चाहिए।

सरकार का ध्यान इस मुख्य बात की ओर कम होकर कुछ साधारण बातों—सरकारी बैंक खोलने, तक़ावी देने, आबपाशी बढ़ाने की ओर क्रमशः आकर्षित हो रहा है। विविध प्रांतों में ऐसे क़ानून भी बनाए गए हैं कि ज़मीदार किसानों से मनमाना लगान लेकर उन्हें सता न

सकें। इन क़ानूनों के बन जाने के कारण किसानों को बेदख़ली का विशेष भय न रहने से यह भरोसा रहता है कि अब खेती की उन्नति करने से लाभ की जो वृद्धि होगी, वह सब ज़मीदार को नहीं मिल जावेगी, वरन्, उस के एक बड़े भाग के अधिकारी स्वयं वे किसान ही होंगे। ये बातें अच्छी हैं, पर इन से मालगुज़ारी के प्रश्न का महत्व कम नहीं होता, उस ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

बारहवां परिच्छेद

परोक्ष करों की आय

भारतवर्ष में परोक्ष कर निम्नलिखित हैं:—

(१) आयात-निर्यात-कर

(२) नमक-कर

(३) अफ़ीम-कर

(४) आबकारी

आयात निर्यात कर—औद्योगिक देशों में इस मद की ही आय प्रधान आय होती है। भारतवर्ष में सरकार को इस मद से होने वाली आय, अन्य किसी एक मद की आय की अपेक्षा अधिक होने पर भी बहुत अधिक नहीं है। सरकार की व्यापार-नीति इस के लिए उत्तरदायी है। भारत-सरकार को आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है, वह अपनी इच्छानुसार आयात-निर्यात पर कर नहीं लगा सकती। इस कर के संबंध में सिद्धांतात्मक बातें पहले बताई जा चुकी हैं। भारत-सरकार आयात निर्यात की विविध वस्तुओं पर कर भिन्न-भिन्न दर से लेती है। योरपीय महायुद्ध से पूर्व भारत-सरकार की व्यापार-नीति प्रायः मुक्त-द्वार व्यापार की थी, इसलिए वह आयात की वस्तुओं पर बहुत कम कर लेती थी, सो भी आय के हेतु, न कि स्वदेशी उद्योग-धंधों के संरक्षण के लिए। कच्चे पदार्थ और मशीनों आदि पर कुछ कर न था। अस्त्र-शस्त्र युद्ध-सामग्री और शराब तथा तंबाकू पर विशेष कर लगाया जाता था, चीनी, कैंची, चाक़ू, घड़ी, साबुन, स्टेशनरी आदि पर उन के मूल्य का प्रायः ५ फ़ी सदी कर लगता था।

जब कोई राज्य मुक्त-द्वार व्यापार-नीति के पक्ष में हो और आय के वास्ते किसी विदेशी वस्तु पर कर लगाए तो उसे स्वदेश की भी उस प्रकार की वस्तु पर कर लगाना होता है।[१] भारतवर्ष में यहाँ के कते सूत और यहाँ के बुने हुए कपड़े पर घातक कर इसी विचार से शुरू हुआ है। सन् १८९४ ई० में भारत-सरकार ने विलायती कपड़ों पर ५ फ़ी सैकड़ा कर लगाया, तो इस के साथ ही देशी सूत पर और देशी मिलों में तैयार होने वाले कपड़ों पर भी इतना ही कर लगा दिया। लंकाशायर के व्यापारियों के असंतुष्ट होने के कारण सन् १८९६ ई० से विदेशी कपड़ों पर महसूल ५) से घटा कर ३॥) सैकड़ा किया गया, तब भारत की मिलों में बने हुए कपड़ों पर भी इतना ही कर निर्धारित किया गया।

योरपीय महायुद्ध काल में तथा उसके बाद सरकार की व्यापार नीति में कुछ परिवर्तन हुआ, सन् १९१६ ई० में यहां की औद्योगिक परिस्थिति की जांच करने के लिए कमीशन बैठाया गया। सन् १९२१ ई० में एक आर्थिक जाँच-समिति नियुक्त हुई। इसने सिफ़ारिश की कि भारतीय उद्योग-धंधों की रक्षा के लिए बाहर से आने वाले माल पर विशेष कर लगना चाहिए, तथा भारत में बनने वाले माल पर कर न लगाना चाहिए। पश्चात् टैरिफ़-बोर्ड (आयात-निर्यात-कर-समिति) की स्थापना हुई और उस की सिफ़ारिश के अनुसार क्रमशः लोहे, फ़ौलाद के सामान, काग़ज़, कपड़े और चीनी को संरक्षण दिया गया अर्थात् इन वस्तुओं की आयात पर ऐसा कर लगाया गया कि वे यहाँ की बनी वस्तुओं से सस्ती न रह जाँय, कुछ मँहगी ही हों। सन् १९२६ ई० में भारत में बनने वाले रुई के माल पर से कर उठा दिया गया। १९३० ई० में इंगलैंड से आने वाले रुई के सामान पर १२ प्रतिशत और ग़ैर-ब्रिटिश, अर्थात् अन्य

[१] देशी माल पर कर दो प्रकार से लगते हैं - (क) उत्पत्ति का नियन्त्रण कर के, और (ख) उत्पत्ति पर राज्य-एकाधिकार कर के।

देशों से आने वाले सामान पर ५ प्रतिशत और अधिक, अर्थात् २० प्रतिशत कर लगाया गया। पीछे यह कर इंगलैंड के माल पर २५ प्रतिशत और ग़ैर-ब्रिटिश माल पर तीस प्रतिशत बैठाया गया।

यह पिछली बात साम्राज्यान्तर्गत रियायत की नीति के अनुसार थी। इसका आशय यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यांतर्गत देश पारस्परिक व्यापार में खास रियायत करें। एक दूसरे की आयात-निर्यात पर, ग़ैर-ब्रिटिश माल की अपेक्षा कम कर लगावें। ओटावा में जो साम्राज्य-परिषद् हुई, उस में तीन वर्ष के लिए इस नीति का समझौता हुआ, परंतु यह भारतवर्ष के लिए बहुत हानिकर थी; इसका यहाँ घोर-विरोध हुआ। बात यह है कि यहाँ से इंगलैंड और अन्य देशों को कच्चा माल जाता है, जिसकी आयात पर कोई औद्योगिक देश कर नहीं लगाता। इस लिए भारतवर्ष के माल को इंगलैंड या उसके उपनिवेशों में रियायत मिलने का प्रश्न नहीं उठता। अब भारतीय आयात की बात लीजिए। यहां दो-तिहाई से अधिक माल ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर से आता है, इस पर अधिक कर लगाने से भारतीय-जनता के लिए वह माल मँहगा हो जाता है, और देश की हानि होती है। इस प्रकार साम्राज्यांतर्गत रियायत की नीति से भारतवर्ष को कुछ लाभ नहीं है। भारतीय व्यवस्थापिका सभा के निरंतर विरोध के कारण अंततः ओटावा के समझौते का अंत हो गया है।

अस्तु, भारतीय लोकमत संरक्षण-नीति को क्रमशः अग्रसर करने के पक्ष में रहा है। भारत-सरकार ने सन् १९२२ ई० से इस ओर ध्यान दिया, और बहुत मंद-गति से क़दम बढ़ाया। इधर कुछ समय से वह सीमित संरक्षण नीति से भी पीछे हट रहा है। टैरिफ़-बोर्ड की सिफ़ारिश होते हुए भी उस ने शीशे के व्यवसाय का संरक्षण न किया। इस वर्ष (सन् १९३६) में सरकार ने इंगलैंड से भारत में आने वाले सादे एवं रंगीन सूती कपड़े पर संरक्षण कर पच्चीस प्रति सैकड़ा से घटा कर बीस

प्रति सैकड़ा कर दिया। साथ ही उसने टेरिफ़-बोर्ड को तोड़ दिया। यह स्पष्टतः ब्रिटिश माल का पक्षपात है, और है, भारत के उद्योग धंधों के संरक्षण के विरुद्ध व्यापार नीति। आवश्यकता है कि सरकार संरक्षण नीति का अवलम्बन जारी रक्खे; समस्त विदेशी तैयार पदार्थों की आयात के अतिरिक्त यहां से बाहर जाने वाले कच्चे पदार्थों पर भी खूब कसकर कर लगावे, जिस से विदेशी माल यहां बहुत अधिक मँहगा होने के कारण उसकी आयात कम हो, और स्वदेशी उद्योग-धंधों को उत्तेजना मिले। लोगों की आर्थिक उन्नति होने से, उनकी आय बढ़ने से, सरकार की भी आय बढ़ती है, और वे सरकारी करों का भार अधिक सुगमता-पूर्वक सहन कर सकते हैं।

आयात-निर्यात कर का भार किन लोगों पर पड़ता है? भारतवर्ष को जूट का तथा अंशतः चावल का एकाधिकार प्राप्त है। अर्थात् जूट की पूर्णतया और चावल की अधिकतर उत्पत्ति भारतवर्ष में होती है। इसलिए इनकी निर्यात पर लगने वाला कर अधिकतर विदेशियों पर पड़ता है। चाय पर का निर्यात कर अंशतः विदेशियों पर, तथा अंशतः इस वस्तु के उत्पादकों पर पड़ता है; कारण इसकी उत्पत्ति में अन्य देशवासियों की प्रतियोगिता है। शराब, तंबाकू, खाद्य-सामग्री, मोटरकार और मोटर साइकिल, रेशमी कपड़ा, रबर टायर, अस्त्र-शस्त्र आदि की आयात पर लगने वाला कर अधिकतर धनिकों पर तथा मध्य श्रेणी के ऊपरले भाग पर और कुछ अंश में मध्य श्रेणी के निचले भाग पर पड़ता है। चीनी, सूत और सूती कपड़े तथा कच्चे माल की आयात पर लगने वाले कर का भार अधिकतर धनी और मध्य श्रेणी वालों पर तथा कुछ अंश में ग़रीबों पर पड़ता है। भारतवर्ष के तैयार हुए मिट्टी के तेल पर तथा विदेशों से यहां आने वाली दियासलाई, मशीनों, रेलवे के सामान और कोयले पर लगाया हुआ कर सब श्रेणी के आदमियों पर पड़ता है, हाँ गाँव वालों की अपेक्षा नगर वालों पर अधिक पड़ता है।

नमक-कर—नमक-कर एक तो बाहर से आए हुए नमक पर लगता है, दूसरे भारतवर्ष में ही बने हुए नमक पर भी वसूल किया जाता है। सन् १८८२ ई० से पहले भिन्न-भिन्न प्रांतों में इस टैक्स की दर में अंतर था, उस वर्ष सरकार ने सब जगह दो रुपए मन टैक्स लगाया। सन् १८८८ ई० में यह ढाई रुपए कर दिया गया, बाद में यह क्रमशः घटाया गया। सन् १९०३ ई० में २) रु० हुआ, सन् १९०५ ई० में १॥) और सन् १९०७ ई० में १) रु० मन रहा। सन् १९१६ ई० (महायुद्ध काल) में अन्यान्य करों की वृद्धि के साथ यह भी बढ़ा, और १) की जगह १।) मन हो गया। उस समय राजस्व सदस्य ने कहा था कि यह कर ऐसा रिज़र्व (रक्षित) साधन है, जिसका युद्ध-काल अथवा अन्य आर्थिक संकट के समय उपयोग हो सकता है। सन् १९२२-२३ ई० (शांतिकाल) का बजट उपस्थित करते हुए राजस्व-सदस्य ने अन्यान्य करों में फिर इसे बढ़ाने का प्रस्ताव किया था। परंतु व्यावस्थापक सभा के विरोध के कारण उस वर्ष यह न बढ़ सका। सन् १९२३-२४ ई० के बजट में फिर आयव्यय की समानता करने की फ़िकर पड़ी तो सरकार की दृष्टि इसी कर पर गई; अन्य करों को वह पहले बढ़ा ही चुकी थी। इस वर्ष भी नमक के कर की वृद्धि का बहुत विरोध हुआ। परंतु सरकार ने सुधरी हुई व्यवस्थापक सभा के मत की भी घोर अवहेलना करके इसे बढ़ा ही दिया। कुछ लोग इस कर में पार्लिमेंट के उदारता-पूर्वक हस्तक्षेप करने की राह देख रहे थे, पर उस के द्वारा भारत सरकार के कार्य का अनुमोदन ही हुआ, ढाई रुपए प्रति मन का नमक कर पास हो गया और निर्धन प्रजा पर एक भार और बढ़ गया। इस समय यह कर १।) प्रति मन है।

नमक एक जीवनोपयोगी पदार्थ है और इस का कर एक ऐसा कर है जो प्रकट अथवा गौण रूप से राजा, और रंक देश के सब आदमियों पर लगता है। नमक तैयार करने का ख़र्च बहुत थोड़ा होता है, कुछ

किराए में ख़र्च होता है। इस ख़र्च को छोड़ कर नमक के मूल्य का सब हिस्सा कर पर निर्भर है। कर-वृद्धि के कारण जब यहाँ नमक मंहगा हो जाता है तो पशुओं की कौन कहे, यह मनुष्यों को भी यथेष्ट मात्रा में नहीं मिलता, और इस का उपयोग कम हो जाता है। अतः नेताओं का मत है कि यह कर बिल्कुल उठा देना चाहिए।

इस कर के पक्ष में कहा जाता है कि (१) यह कर बहुत प्राचीन है, यह यहाँ हिंदू काल में भी प्रचलित था, उस समय इस का परिमाण बहुत अधिक था; अब तो यह अपेक्षा-कृत कम है। (२) यह परोक्ष कर है, अतः लोगों को इस का भार मालूम नहीं होता। (३) यह बहुत हलका कर है। परंतु प्राचीन काल में यह कर आजकल की सी कठोरता से वसूल नहीं किया जाता था, बहुत से आदमी अपने उपयोग के लिए इसे बना सकते थे। उस समय अन्य सब करों का संमिलित भार बहुत कम था, अब बहुत अधिक है। फिर, यदि प्राचीन काल में कोई अनुचित कर प्रचलित था तो यह कोई कारण नहीं है कि अब, उस के अनौचित्य को जानते हुए भी, उसे जारी रक्खा जावे। इस कर का परोक्ष होना भी इसे उचित नहीं ठहरा सकता, पदार्थों पर लगाए हुए सभी कर परोक्ष होते हैं। इसी प्रकार इस कर का हलका होना भी इस के समर्थन के लिए अच्छी युक्ति नहीं है। नमक की ग़रीब-अमीर सब को बराबर आवश्यकता है। सब इस का बराबर उपयोग करते हैं, इसलिए इस कर का भार ग़रीबों पर अधिक पड़ता है, इस से कर संबंधी समानता के सिद्धांत की अवहेलना होती है (देखो नवां परिच्छेद)।

भारतवर्ष में यह कर सब से अधिक अप्रिय और असंतोष-मूलक है। भारतीय व्यवस्थापक-सभा में इस का बराबर विरोध हुआ है। इन बातों का सम्यक् विचार होने से इस का अनौचित्य स्वतः सिद्ध है।

अफ़ीम-कर—भारतवर्ष में सरकार को अफ़ीम तैयार करने का

एकाधिकार है, अन्य व्यक्ति इसे तैयार नहीं कर सकते। पहले सरकार को इस की निर्यात से खूब आमदनी होती थी, परंतु इस के उपयोग से चीन आदि देशों के निवासियों को बहुत हानि पहुँचती थी, अतः अंतर्राष्ट्रीय जगत में तथा स्वयं भारतवर्ष में इस का बहुत विरोध हुआ। अंततः चीन में इस की निर्यात सन् १९०८ ई० से क्रमशः घटा कर सन् १९१८ में बंद की गई। पश्चात् सन् १९२६ ई० से श्याम, स्ट्रेट सेटलमेंट और हांगकांग आदि में भी इस की निर्यात कम की गई। अब भारतवर्ष से अफ़ीम की निर्यात कहीं भी नहीं होती। परंतु भारतवर्ष में इस का उपयोग घटाने का कुछ प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। यद्यपि इस का उपयोग घटाने से सरकारी आय कम होगी, परंतु इस से लोगों की कार्य क्षमता बढ़ेगी, तो उन की आय बढ़ने से सरकार की आय भी बढ़ेगी और उपर्युक्त कमी की सहज ही पूर्त्ति हो जायगी।

आबकारी-कर—अफ़ीम के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। उसे छोड़कर अन्य मादक पदार्थों पर लगाया जाने वाला कर यहाँ आबकारी कर कहलाता है। उदाहरणवत् यहां यह कर भांग, चरस, शराब आदि मादक पदार्थों पर लगाया जाता है। उस में राज्य का उद्देश्य केवल आय-प्राप्ति ही नहीं होना चाहिए। प्रजा-हित के लिए तो सरकार को चाहिए कि इन पदार्थों को कम मात्रा में तैयार करावे, उन के बेचने वालों को बड़ी सावधानी से लेसेंस दे, दुकानें बस्ती से बाहर और बहुत थोड़ी रखे, तथा कर भी भारी लगाए। तब जाकर इन का व्यवहार घटने की आशा हो सकती है। यहाँ मादक पदार्थों को बनाने या तैयार करने का सरकार को प्रायः एकाधिकार है। इन की बिक्री से जो आय होती है, उस में से उत्पादक व्यय निकलने पर जो शेष रहे, वह सरकारी मुनाफ़ा होता है, और आय में संमिलित होता है।

इस समय केंद्रीय सरकार प्रांतीय सरकारों को अफ़ीम निर्धारित दर से बेचती है। इस बिक्री से जो आय होती है वह केंद्रीय सरकार की

आय होती है। इस मद का ब्योरा यह है—लाइसैंस, डिस्टिलरी फ़ीस, शराब और अन्य मादक पदार्थों की बिक्री पर महसूल, आबकारी विभाग का अफ़ीम बिक्री से लाभ, जुर्माना, ज़ब्ती, और अन्य आय।

शोक की बात है कि इस मद की आय में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा में अनेक बार इस आशय का प्रस्ताव किया गया कि सरकार मादक द्रव्यों के सेवन को न बढ़ने देने की नीति रक्खे, परंतु सरकार को स्वीकृत नहीं। वह शराब की दूकानों पर पहरा देने वालों तथा टैम्परैंस (मद्यपान-निवारण) सभाओं के कार्य में बाधा डालती है; और उन पर तरह-तरह की सख़्ती करती है। इस से स्पष्ट है कि सरकार को जैसे बने, वैसे आमदनी चाहिए, मादक द्रव्यों के प्रचार को रोकने के लिए वह दिलोजान से तैयार नहीं। इस प्रकार देश का आत्मिक-पतन कब तक होता रहेगा ?

अंन्याय विभागों में यह विभाग प्रांतीय सरकारों के हाथ में दिया गया है, जिन्हें प्रांतों की उन्नति के लिए रुपए की बड़ी आवश्यकता है। अतः यह आशा हो ही नहीं सकती कि प्रांतीय सरकार इस विभाग से अधिकाधिक आमदनी प्राप्त करने, और इसलिए मादक द्रव्यों का अधिकाधिक प्रचार करने में कोई कसर रखें। बड़ी ज़रूरत इस बात की है कि सरकार मादक द्रव्यों का प्रचार घटाने की उपयुक्त नीति काम में लावे; निस्संदेह इस से सरकारी आय में कमी होगी, और आरंभ में कुछ समय तक प्रबंध व्यय भी बढ़ेगा, परंतु उस की पूर्त्ति जनता की कार्य-क्षमता बढ़ने से उसी प्रकार हो जायगी जैसे अफ़ीम के संबंध में पहले बता आए हैं।

विशेष वक्तव्य—ऊपर, सरकार के मुख्य परोक्ष करों की आय के संबंध में लिखा गया है। इस के अतिरिक्त सरकार को 'अन्य करों' से भी कुछ आय होती है। इस मद के केंद्रीय भाग की कुछ आय तो सरकार को देशी राज्यों से मिलने वाले वार्षिक नज़रानों से होती है।

यह नज़राना प्रायः उन संधियों के अनुसार मिलता है, जिन से पूर्व काल में देशी राज्यों के कुछ स्थानों का ब्रिटिश भारत के कुछ स्थानों से परिवर्तन हुआ था, या जिन से देशी नरेश अपने राज्य में फ़ौज रखने के उत्तरदायित्व से मुक्त हुए थे। इस के अतिरिक्त, केंद्रीय सरकार की कुछ आय ऐसी भी है, जो चीफ़ कमिश्नरों के प्रांतों में मालगुज़ारी आबकारी, स्टाम्प, जंगल और रजिस्ट्री से होती है। उपर्युक्त 'अन्य करों' की मद के प्रांतीय भाग में वह रक़म संमिलित है, जो प्रांतीय सरकारें सिनेमा आदि खेल तमाशों से कर के रूप में लेती हैं।

तेरहवां परिच्छेद

फ़ीस की आय

प्राक्कथन—फ़ीस के अंतर्गत सरकार को, न्याय स्टाम्प, रजिस्टरी, पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, सिविल निर्माण कार्य, मुद्रा टकसाल और विनिमय की मदों से होने वाली आय संमिलित है। पहले कहा जा चुका है कि इन कार्यों का उद्देश्य आय-प्राप्ति नहीं होता, इन से होने वाली आय इन के व्यय से कम रहनी चाहिए। परंतु भारतवर्ष में न्याय, स्टाम्प और रजिस्टरी से आय बहुत होती है। इस दृष्टि से इन की आय फ़ीस न रह कर कर हो जाती है, तथापि इस का विचार हम फ़ीस में ही करते हैं, जैसा कि सिद्धांत से होना चाहिए।

न्याय—इस विषय में निम्न प्रकार की आय होती है, अनधिकृत माल की बिक्री, कोर्ट-फ़ीस जिस में दीवानी अदालत के अमीन और कुड़क अमीन आदि की फ़ीस शामिल है, हाई कोर्ट या उसके आधीन दीवानी अदालतों की फ़ीस, मैजिस्ट्रेटों का किया हुआ जुर्माना और ज़ब्ती आदि, वकालत की परीक्षा फ़ीस, विविध फ़ीस और जुर्माने।

सरकारी हिसाब में प्रायः न्याय की आय, ख़र्च की अपेक्षा बहुत कम रहती है। वास्तव में यह बहुत अधिक होती है। सरकारी हिसाब में कम दिखाने का कारण यह है कि स्टाम्प की बहुत सी आमदनी जो कि पृथक् दिखाई जाती है वास्तव में न्याय संबंधी ही होती है, इस के संबंध में आगे विचार किया जायगा। जैसा कि हमने अन्यत्र कहा है, न्याय सस्ते से सस्ता होना चाहिए। देश का क़ानून ही इस प्रकार बदला

जाना चाहिए कि मुकदमे बाज़ी कम हो, आदमी पंचायतों में ही निपट लें, अस्तु न्याय-विभाग की आय वृद्धि हम अच्छी नहीं समझते।

स्टाम्प—यह कर दो प्रकार का होता है, (१) अदालती और (२) ग़ैर-अदालती। प्रथम प्रकार में कोर्ट-फ़ीस या अदालतों में पेश होने वाले मुक़दमों के कागज़ व दरख़्वास्तों पर लगाए जाने वाले स्टाम्प की आय संमिलित है। दूसरे प्रकार में व्यापार व उद्योग धंधों संबंधी काग़ज़ों पर (दस्तावेज़, हुंडी, पुर्जे, चेक, रुपयों की रसीद, आदि पर) लगने वाले स्टाम्प की आय होती है। यह कर प्रायः हलका ही होता है।

अदालती स्टाम्प प्रत्यक्ष रूप से न्याय पर कर हैं। ग़ैर-अदालती स्टाम्प भी, कुछ परोक्ष रूप में, न्याय-कर ही है। रुपया लेने की रसीद पर, या हुंडी आदि पर स्टाम्प इस लिए ही लगाया जाता है कि यदि पीछे कोई वाद-विवाद हो तो न्याय होने के अवसर पर प्रमाण तैयार रहे, इस प्रकार स्टाम्प की आय जितनी अधिक होगी, उतना ही यह समझा जायगा कि प्रजा को न्याय प्राप्त करने के लिए अधिक ख़र्च करना पड़ा। अतः यह आय अल्पतम होनी चाहिए, जिस से न्याय सस्ते से सस्ता हो।

रजिस्टरी—इस मद की आय निम्न विषयों में होती है:—दस्तावेज़ों का रजिस्टरी कराने की फ़ीस, रजिस्टरी की हुई दस्तावेज़ों की नक़ल की फ़ीस, विविध फ़ीस या जुर्माने आदि।

काग़ज़ों की रजिस्टरी होने से लोगों को बेईमानी करने का अवसर कम होता है। इस विभाग में एक परिमित सीमा तक की आमदनी बुरी नहीं।

पुलिस—इस मद में निम्न विषयों द्वारा आय होती है—सार्वजनिक विभागों, प्राइवेट कंपनियों और लोगों को दी गई पुलिस से आय, हथियार रखने के क़ानून से आय। मोटर आदि की रजिस्टरी करने आदि की फ़ीस, जुर्माने और ज़ब्ती।

शिक्षा—इस मद् में निम्न विषयों से आय होती है—(१) विश्व विद्यालय सरकारी आर्ट कालेज, और सरकारी औद्योगिक कालेजों की फ़ीस (२) माध्यमिक—सरकारी माध्यमिक स्कूलों की फ़ीस, तथा छात्रालयों से आय (३) प्रारंभिक—सरकारी प्रारंभिक स्कूल फ़ीस (४) स्पेशल फ़ीस, मिडिल स्कूल फ़ीस। सुधारक स्कूलों के कारखाने की आय। (५) जनरल सहायता, या दान। (६) विविध; परीक्षा फ़ीस सिविल एंजिनयरिंग कालेज, किताबों, और अन्य सामान की विक्री, प्रांतीय परीक्षाओं की फ़ीस आदि।

न्याय की भाँति, शिक्षा भी जितनी सस्ती हो, उतना अच्छा है। प्रारंभिक शिक्षा तो बिल्कुल बिना फ़ीस ही होनी चाहिए, अन्य शिक्षा की फ़ीस भी यथा संभव कम रहना उत्तम है। वर्तमान समय में यहां शिक्षा ऐसी मंहगी है कि सर्व साधारण की कौन कहे, मध्यम श्रेणी के भी बहुत से आदमी इस का व्यय सहन नहीं कर सकते। इसलिए देश में अविद्यान्धकार छाया हुआ है। इसे दूर करना चाहिए। इसलिए शिक्षा विभाग को फ़ीस द्वारा आय बढ़ाने का लक्ष्य न रखना चाहिए।

स्वास्थ और चिकित्सा—इस मद् की आय निम्न विषयों से होती है—(अ) स्वास्थ—दवाइयां और टीका लगाने की चीज़ों की विक्री, सहायता। (आ) चिकित्सा—मेडिकल स्कूल और कालिज फ़ीस, अस्पताल की आय, पागल खानों की आय जिस में ऐसे पागलों को रखने देने वाली आय भी शामिल है, जो दरिद्र न हों। म्युनिसिपैलटियों और छावनियों की सहायता, सर्वसाधारण का चन्दा, सैनिक विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए सहायता। दान की आय, विविध; रसायनिक विश्लेषण की फ़ीस आदि।

सिविल निर्माण कार्य—इस मद् में सरकारी मकानों का किराया, उन की विक्री का रुपया, तथा अन्य इस प्रकार की विविध आय संमिलित है।

मुद्रा टकसाल और विनिमय—इस मद में सरकार के 'पेपर करेंसी रिज़र्व' नामक कोष में जो 'सिक्यूरिटियों' रक्खी जाती हैं, उन की रक़म का सूद तथा भारतवर्ष के लिए पैसा इकन्नी आदि सिक्के ढालने का लाभ संमिलित है। रुपया ढालने का लाभ 'गोल्ड स्टैंडर्ड रिज़र्व' अर्थात् मुद्रा ढलाई लाभ कोष में डाला जाता है। विनिमय की आय के संबंध में इस मद में होने वाले व्यय के प्रसंग में लिखा जा चुका है।

चौदहवां परिच्छेद

व्यवसायिक आय

सरकार को जिन व्यवसायिक कार्यों से आय होती है, वे मुख्यतया निम्नलिखित हैं:—रेल, डाक-तार, जंगल और नहर। जेलों से होने वाली आय भी जो परिमाण में विशेष नहीं होती—व्यवसायिक ही है।

रेल—रेलों के संबंध में कुछ बातें पहले बताई जा चुकी हैं। इस मद की आय के हिसाब के वास्ते सरकारी रेलों की कुल आय में से उन के चलाने का ख़र्च तथा कंपनियों को दिया हुआ मुनाफ़ा घटा दिया जाता है, और शेष में कंपनियों की रेलों से होने वाली आय जोड़ दी जाती है।

रेलों की व्यवस्था में कई दोष हैं। उन में अधिकांश विदेशी पूंजी और विदेशी प्रबंध है, जिस में भारतवर्ष को सूद की बड़ी रक़म बाहर भेजनी होती है, और जनता के हितों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। तीसरे दर्जे के यात्रियों को, जिन की संख्या अन्य सब दर्जों के यात्रियों से अधिक होती है, बहुत शिकायतें रहती हैं। माल ले जाने की दरें देश के व्यापार तथा उद्योग धंधों की उन्नति के लिए अनुकूल नहीं हैं। यदि इन दरों में आवश्यक परिवर्तन किया जाय और जनता की सुविधाओं का यथेष्ट विचार किया जाय, तो उन के द्वारा होने वाले व्यापार और यात्रा की वृद्धि हो और फलतः उन की आय भी बढ़े।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सन् १९२५ ई० से रेलों का हिसाब अन्य सरकारी हिसाब से पृथक् कर दिया है। इस समय यह व्यवस्था है:—

रेलों में लगी हुई पूंजी का एक प्रतिशत सरकारी आय में सम्मिलित किया जाता है, इस के अतिरिक्त जिस वर्ष निर्धारित से अधिक मुनाफ़ा होता है, उस वर्ष के अधिक मुनाफ़े का पंचमांश भी सरकार को मिलता है। अगर सैनिक महत्व वाली रेलों से नुक़सान हो तो उतनी रक़म सरकार को दी जाने वाली रक़म से काट ली जाती है। अगर सरकार को दी जाने वाली रक़म चुकाने के बाद रेलवे रिज़र्व फंड के लिए तीन करोड़ से अधिक रुपया रह जाय, तो जितना रुपया अधिक हो, उस का तृतीयांश सरकार को दिया जाता है।

डाक और तार—इस मद की आय में वह रक़म दिखाई जाती है जो कुल आय में से संचालन-व्यय निकाल कर शेष रहती है। कुल आय में (क) भारतवर्ष में होने वाली डाक और तार की आय, मनी-आर्डर-कमीशन और इंडो-योरपियन तारों की आय तथा (ख) इंगलैंड में होने वाली इंडो-योरपियन तारों की आय सम्मिलित होती है। व्यय में (१) भारतवर्ष के कार्यालयों का व्यय, स्टेशनरी, और छपाई, डाक लाने और ले जाने का ख़र्च, तार की लाइन आदि का ख़र्च, (२) इंगलैंड में ईस्टर्न मेल के लिए दी जानी वाली रक़म तथा (३) भारतवर्ष और इंगलैंड में होने वाले इंडो-योरपियन तारों का ख़र्च सम्मिलित है।

भारतवर्ष में सरकार ने जनता की सामर्थ्य और सुविधा का विचार न करते हुए पोस्टकार्डों और लिफ़ाफ़ों का मूल्य बढ़ा रखा है, इससे लोगों के पारस्परिक व्यवहार-वृद्धि में बड़ी रुकावट है। पार्सलों के महसूल की दर बढ़ने से अब जन साधारण को वी० पी० से पुस्तकें मंगाने का ख़र्च बहुत कष्टप्रद हो गया है। इस से साहित्य और शिक्षा प्रचार को बहुत धक्का पहुँच रहा है।

सरकार ने डाक और तार दोनों विभागों को मिला रक्खा है। इस लिए डाक का महसूल पहले से बढ़ाया जा चुकने पर भी इस संयुक्त मद में

घाटा रहता है। यदि दोनों विभाग अलग-अलग हों तो डाक में बचत हो सकती है; हाँ तार का कार्य घाटे पर चल रहा है। इस में किफ़ायत की आवश्यकता है।

जंगल—इस मद में निम्नलिखित आय होती है:—लकड़ी या अन्य पैदावार* जो सरकार ले, लकड़ी या अन्य पैदावार जो जनता के आदमी लें, जंगल का बे वारसी और ज़ब्त किया हुआ माल, विदेशी लकड़ी या अन्य जंगल की पैदावार पर महसूल, इस विभाग संबंधी जुर्माना, ज़ब्ती आदि।

जंगल विभाग का उद्देश्य प्रजा-हित ही रहना चाहिए; आय का लक्ष्य रखकर प्रजा-हित की उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं। इस समय अनेक स्थानों में जंगल विभाग के कारण चरागाहों की बड़ी कमी हो गई है। इस से सर्व साधारण को पशु-पालन में बड़ी कठिनाई है। पुनः अब ईंधन महगा होने के कारण उस का कुछ काम गोबर के उपलों से ही ले लिया जाता है। इस से खाद की कमी होती है। जंगल विभाग का इस ओर ध्यान देना चाहिए।

आबपाशी—इस मद्द की आय, कुल आय में से संचालन व्यय निकाल कर दिखाई जाती है। कुल आय में कुछ आय तो प्रत्यक्ष होती है और कुछ वह होती है जो आबपाशी के कारण मालगुज़ारी के बढ़ने से होती है। भारतवर्ष में नहरों और बड़े तालाबों का कार्य बहुत बढ़ने की आवश्यकता है। कार्य बढ़ने के साथ आय का बढ़ना अनुचित नहीं, परंतु इस की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि जनता की सुविधा का सम्यग् ध्यान रक्खा जाय, और दर नियमित रहे।

---

* जंगल की अन्य पैदावार में मुख्य बांस, घास, ईंधन, कोयला राल आदि पदार्थ होते हैं।

वर्तमान अवस्था में कृषकों को नहर-विभाग के संबंध में कई शिकायतें हैं। एक मुख्य शिकायत तो यही है कि आबपाशी की दर बहुत अधिक है; इस संबंध में अधिकारियों को यह व्यवस्था करनी चाहिए कि जो नहरें व्यवसायिक दृष्टि से बनाई गई हैं, उन में जो पूंजी लगी है उस का सूद साधारण मुनाफ़े सहित मिल जाय, ऐसे हिसाब से ही आबपाशी की दर निश्चित की जाय। दर का अधिक रहना उचित नहीं है। आबपाशी की आय कोई कर की आय नहीं है, इस का उद्देश्य बहुत अधिक धन-प्राप्ति न होकर जनता की सुविधा होनी चाहिए। इस मद से बहुत अधिक आय होने का अर्थ यह है कि यह अपने उद्देश्य पूरा नहीं करती।

किसानों की नहर-विभाग संबंधी दूसरी शिकायत यह है कि उन्हें सिँचाई के लिए पानी उचित समय पर नहीं मिलता, जिन कृषकों से अधिकारियों को कुछ ऊपर की आमदनी हो जाती है, उन पर विशेष कृपा रहती है, दूसरों को पानी प्रायः ऐसे समय पर मिलता है जब वह पूर्णतया लाभदायक नहीं होता। यह न होना चाहिए, किसानों को सिँचाई के लिए अनुकूल समय पर पानी मिलने से उन की फ़सल अच्छी होगी, और फल-स्वरूप सरकारी आय की भी वृद्धि होगी।

जेल—जेलों की आय विशेषतया उन के उस सामान की बिक्री से होती है, जो उन के कारख़ानों में क़ैदियों द्वारा तैयार कराया जाता है। क़ैदी काफ़ी घंटे काम करते हैं, पर प्रायः उन के श्रम के प्रतिफल में से उन्हें कुछ भाग दिए जाने की व्यवस्था नहीं होती; इसलिए वे काम उतना मन लगाकर नहीं करते; जो माल तैयार होता है, वह घटिया दर्जे का होता है। फिर, इन कारख़ानों में जैसे-तैसे क़ैदियों को घेर कर रक्खा जाता है, यदि उन्हें उन की रुचि के अनुसार काम दिया जाय, उस का प्रबंध आदि ठीक हो तो उत्पत्ति अधिक हो सकती है। बहुधा जेलों में जो माल तैयार होता है उस के बेचने के लिए भी उचित प्रबंध नहीं

किया जाता, इस में यथेष्ट सुधार हो तो माल के दाम अच्छे उठें। प्रायः जेलों के बग़ीचों में जो फल या शाकादि होता है। उस का उत्तम भाग उच्च पदाधिकारियों की भेंट किया जाता है। वह क़ैदियों को ही दिया जाना उचित है। पश्चात् यदि कुछ बचे तो वह बेचा जाना चाहिए। अस्तु, जेलों की आय में काफ़ी वृद्धि हो सकती है।

विशेष वक्तव्य—सरकार की व्यवसायिक आय का विचार हो चुका। सरकार को कुछ आय पूर्वोक्त के अतिरिक्त अन्य साधनों से भी होती है। इन में मुख्य सेना, सूद आदि हैं। सैनिक आय में सैनिक स्टोर, कपड़े दूध, मक्खन, तथा पशुओं की बिक्री से और सैनिक निर्माण कार्य से होने वाली आय सम्मिलित है।

सूद की मद्द के केंद्रीय भाग में (क) भारत सरकार द्वारा प्रांतों को दिए हुए ऋण और पेशगी का सूद, रेलवे कंपनियों को दी हुई पेशगी का सूद, तथा उन के 'प्राविडेंट फंड' की सिक्यूरिटी का सूद, और (ख) इंगलैंड में सूद की विविध आय सम्मिलित होती है। इस मद्द की प्रांतीय आय ज़िला और अन्य 'लोकल फंड' कमेटियों, म्युनीसिपैलटियों, ज़िला बोर्डों, ज़मींदारों, किसानों तथा सहकारी समितियां आदि को दिए हुए ऋण के सूद से होती है।

सरकारी हिसाब में जो विविध आय की केंद्रीय मद्द है, उस में पेंशन संबंधी आय के अतिरिक्त सरकारी स्टेशनरी अथवा पुस्तकों, गज़ट या रिपोर्टों आदि की बिक्री से होने वाली आय मुख्य है। प्रांतों को पुराने स्टोर और सामान की, तथा ज़मीन और मकान ('नज़ूल') की बिक्री से सरकारी लेखा-परीक्षक आदि की फ़ीस से, और ज़मीन और मकानों के किराए आदि से भी आय होती है।

पन्द्रहवां परिच्छेद

स्थानीय-राजस्व

केंद्रीय और प्रांतीय राजस्व का वर्णन हो चुका; अब स्थानीय राजस्व का वर्णन किया जाता है।

स्थानीय कार्यों की विशेषता—नगरों और देहातों में बहुत से काम ऐसे होते हैं जिन्हें संगठित रूप से करने की आवश्यकता होती है। सड़क बनवाना नालियाँ बनवाना और साफ़ कराना, बालकों की शिक्षा का प्रबंध करना आदि ऐसे कार्य हैं जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति पृथक् पृथक् रूप से अच्छी तरह संपादित नहीं कर सकता। परंतु केंद्रीय या प्रांतीय सरकार द्वारा भी यह यथेष्ट रूप में नहीं किए जा सकते, क्योंकि इन में निरीक्षण या देख-भाल की बहुत आवश्यकता होती है, और देश भर के सब नगरों या देहातों में यह कार्य एक ही तरह के न होकर स्थानीय परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के होने की आवश्यकता होती है। इसलिए किसी नगर या देहात के ऐसे कार्य उसी स्थान के निवासियों के प्रतिनिधि विशेष उत्साह और कुशलता-पूर्वक करा सकते हैं।

स्थानीय और अन्य राजस्व में भेद—स्थानीय राजस्व का और प्रांतीय तथा केंद्रीय राजस्व का भेद जानने के लिए पहले हमें स्थानीय संस्थाओं के और प्रांतीय तथा केंद्रीय सरकार के कामों के भेद पर विचार करना चाहिए।

१—स्थानीय संस्थाओं के कार्य का विस्तार कम होता है उस का संबंध किसी ख़ास ज़िले अथवा उस के भी किसी एक भाग से रहता है।

२ केंद्रीय अथवा प्रांतीय व्यवस्था से स्थानीय संस्थाओं की शक्ति पर बहुत नियंत्रण रहता है, यद्यपि इन के कार्य-क्षेत्र को क्रमशः बढ़ाया जाता है।

३ —स्थानीय संस्थाओं के कार्य बहुधा प्रत्यक्ष और आर्थिक प्रकार के होते हैं और उन से होने वाले लाभ की कुछ माप हो सकती है।

स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यों को चलाने के लिए 'रेट्स' लेती हैं। इन्हें साधारण बोल-चाल में टेक्स या कर देते हैं। पर वास्तव में केंद्रीय (तथा प्रांतीय) और स्थानीय करों में भेद है: —

(१) स्थानीय संस्थाएं अपने करों से प्राप्त होने वाली आय को रोशनी सड़कों की मरम्मत, शिक्षा, सफ़ाई, पानी के नलों आदि के ऐसे कार्यों में खर्च करती है, जिन से कर दाताओं को प्रत्यक्ष लाभ हो, जब कि केंद्रीय करों से लाभ प्रत्यक्ष होता हुआ मालूम नहीं होता। (२) केंद्रीय करों की आय अनिश्चित होती है, वह जनता की सुख-समृद्धि पर निर्भर होती है। स्थानीय संस्थाओं के करों से होने वाला खर्च पहले से निश्चित रहता है, इन करों की रक़म स्थानीय संस्था के क्षेत्र में रहने वाले उन व्यक्तियों से निर्धारित दर से वसूल की जाती है, जिनके पास सम्पत्ति या जागीर होती है। (३) केंद्रीय कर प्रायः देश भर में एक ही प्रकार के होते हैं और एक ही दर से वसूल किये जाते हैं, इसके विपरीत स्थानीय करों में तथा उन की दर में स्थान-भेद से भिन्नता होती है, उदाहरणवत एक म्युनीसिपेल्टी मकान पर कर लगाती है, दूसरी नहीं लगातीं, एक में यह कर किराये की रक़म पर एक आना फ़ी रुपया और दूसरी में दो आने या कम ज्यादह होता है।

स्थानीय राजस्व का आदर्श—स्थानीय स्वराज्य पूर्ण रूप से होने की दशा में, स्थानीय राजस्व का आदर्श यह है कि प्रत्येक स्थानीय संस्था अपनी सीमा में रहने वाले आदमियों से अपने कर वसूल

करें, उसे उस सीमा में उन करों से प्राप्त आय को नागरिकों के हित के लिए, व्यय करने का अधिकार हो, वह इन करों को अपनी इच्छा से अपने साधनों या आवश्यकताओं के अनुसार घटा या बढ़ा सके। उसके कार्य-क्षेत्र की सीमा देश के साधारण नियम से निश्चित हो। निस्संदेह प्रत्येक स्थानीय संस्था का संबंध एक ऐसे क्षेत्रफल में होने वाले कार्यों से रहना चाहिये जो, उसके कार्यों का उद्देश्य पूरा करते हुए, कम से कम हो। प्रायः एक स्थानीय संस्था की सीमा एक नगर या कस्बा, या बड़ा गांव, या कुछ छोटे छोटे गांवों का समूह समझी जाती है।

स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं और सरकार का राजस्व संबंध—राजस्व के विषय में स्थानीय स्वराज्य संस्था और केन्द्रीय या प्रांतीय सरकार का संबंध निम्न लिखित प्रकार का हो सकता है:—

१—सरकार, संस्थाओं वसूल से किए जाने वाले करों का स्वरूप तथा उनकी रकम निर्धारित कर दे, या केवल कर ही निर्धारित करे और यह अधिकार संस्थाओं को दे दे कि वे उससे अनुमति लेकर करों से होने वाली आय को घटा बढ़ा सकें। इस दशा में संस्थाएँ राजस्व के संबंध में सरकार के अधीन रहेंगी।

२—सरकार, करों का स्वरूप और उनसे वसूल की जाने वाली रकम निश्चित करने का अधिकार संस्थाओं को ही दे दें। इस दशा में संस्थाएँ, राजस्व के संबंध में स्वाधीन रहेंगी।

भारतवर्ष में, यद्यपि इस बात का विचार किया जाता है कि संस्थाएँ अपनी आय को बढ़ावें, तथापि अभी तक वे सरकार की सहायता का बहुत आश्रय लेती हैं, उनकी अपनी आय इतनी नहीं होती कि वे अपने निरंतर बढ़ने वाले कार्यों को भली भांति चला सकें। इसलिए जब कभी उन्हें सरकार से यथेष्ट सहायता नहीं मिलती तो उन्हें बहुत कठिनाई होती है।

बड़े बड़े कामों के लिए संस्थाओं को बहुधा ऋण लेना होता है।

भारतवर्ष में यह ऋण प्रायः सरकार से लिया जाता है।

स्थानीय करों का विवेचन—कर संबधी नियम पहिले दिए जा चुके हैं। करों का साधारण विवेचन भी हो चुका है। यहाँ स्थानीय करों के संबंध में कुछ विशेष बातों का उल्लेख किया जाता है। पहले व्यापार पर लगने वालों करों का विचार करें।

व्यापार पर कर—भारतवर्ष में कई प्रांतों में स्थानीय संस्थाओं की अधिकतर आय उस महसूल से होती है जो इस देश के ही दूसरे स्थानों से उनकी सीमा के अंदर आने वाले माल पर लगता है। इसे चुंगी कहते हैं। यह कर स्थानीय उपभोग पर लगता है। पर जिन स्थानों से माल आता है, उन पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है।

पाश्चात्य देशों में आंतरिक व्यापार की खूब उन्नति हो गयी है। नगरों में सड़कों का जाल सा बिछा हुआ है, और प्रत्येक नगर एक दो खास चीज़ों के बनाने में लगा रह कर, अपनी शेष सब आवश्यकताओं की पूर्त्ति दूसरे स्थानों से माल मंगाकर करता है। ऐसी दशा में चुंगी लगाने का कार्य बहुत असुविधाजनक और अपरिमित व्यय-साध्य होता है। परंतु भारतवर्ष में यह बात नहीं है।

इस कर से होने वाली आय अनिश्चित रहती है। कर-दाता को बड़ी असुविधा रहती है, उसे जब अपने परिवार के आदमियों के साथ नगर में प्रवेश करते समय चुंगी की चौकी पर ठहरना पड़ता है तो बुरा लगता है। यह कर जब जीवन-रक्षक पदार्थों पर लगता है तो इसका भार धनिकों की अपेक्षा गरीबों पर अधिक पड़ता है। इसके वसूल करने का खर्च अपेक्षाकृत अधिक होता है, और इसमें धोखा देकर कर से बचने की भी बहुत गुंजाइश है। इस कर के कारण आदमियों तथा गाड़ियों आदि की आवाजाई में बाधा उपस्थित होती है। कर-जांच-समिति की सिफ़ारिश थी कि यह कर उठा दिया जाना चाहिये, और अगर ऐसा करना संभव न हो इसकी जगह अंतिम स्थान कर ('टरमिनल टेक्स') लिया

जाय, जो वस्तुओं के भेद या मूल्य के अनुसार न होकर वज़न के हिसाब से होता है।

मकान-कर—यह कर मकान के वार्षिक किराए पर निर्धारित दर से लगाया जाता है। बहुत सी म्युनिसिपिलैटियों में इस कर के लगाए जाने की गुंजाइश है, यदि मकानों के मौक़े ('साइट') का भी विचार रक्खा जाय तो आय और बढ़ सकती है। गृह-कर बहुधा मकान के मालिक पर न पड़ कर उसके किराएदार पर पड़ता है, क्योंकि मालिक किराए के साथ ही प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से इसे वसूल कर लेता है। यदि मकानों की मांग बहुत न हो तो यह कर मकान मालिक पर ही पड़ता है। देहातों में इस कर के समान 'अबवाब' लिया जाता है, यह प्रायः मालगुज़ारी के साथ उस पर एक आना फ़ी रुपए के हिसाब से लिया जाता है। इसे सरकार वसूल करती है, और पीछे ज़िला-बोर्डों को दे देती है।

यात्री-कर—कुछ स्थानों पर यात्री-कर लिया जाता है। इसका भार वहां आने वालों पर पड़ता है, जो यह समझा जाता है कि उन स्थानों से लाभ उठाते हैं। यह कर प्रायः रेलवे महसूल के साथ सुभीते से वसूल कर लिया जाता है। बहुत से स्थानों में इस आय का अधिकांश भाग स्थानीय कार्यों के लिए ही खर्च किया जाता है, यात्रियों के लिए नहीं।

हैसियत-कर—यह आय कर की भाँति प्रत्यक्ष कर है, इसका परिमाण बहुत कम रक्खा जाता है इसे प्रायः ज़िला-बोर्ड लेते हैं। कुछ स्थानों में नौकर रखने वालों से भी कर लिया जाता है।

फ़ीस आदि—कुछ विशेष कार्यों के उपलक्ष्य में स्थानीय संस्थाएं नागरिकों से फ़ीस या महसूल लेती हैं, जैसे पानी (नल) का महसूल,

रोशनी का महसूल (बिजली आदि), स्कूल फ़ीस आदि। कुछ शुल्क विलासिता की वस्तुओं पर, अथवा सुव्यवस्था की दृष्टि से लिए जाते हैं, यथा मोटर, साइकिल, तांगा, कुत्ता आदि रखने का महसूल।

भारतवर्ष की स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ—प्राचीन समय में यहाँ चिरकाल तक स्थानीय कार्य, देहातों में ग्राम्य-संस्थाओं द्वारा, और नगरों में व्यापार-संघों (ट्रेड गिल्ड) द्वारा होता रहा। भारतवर्ष देहातों का देश है। अब भी यहां ९० फ़ी सदी जनता देहातों में रहती है। पहले यहां का प्रायः प्रत्येक देहात अपनी शिक्षा स्वास्थ्यादि की सामाजिक आवश्यकता स्वयं पूरी कर लेता था। यहां की ग्राम्य पंचायतें बहुत प्रसिद्ध रही हैं। प्रत्येक गाँव की पंचायत रक्षार्थ पुलिस रखती थी, छोटे मोटे झगड़ों का निपटारा करती थी, भूमि-कर वसूल करके राज्य कोष में भेजती थी, और तालाब, पाठशाला, मन्दिर, पुल, सड़क आदि स्थानीय उपयोगिता के सार्वजनिक कार्यों का प्रबंध करती थी। मुग़ल शासन में भी पंचायतों का काम जारी रहा, यद्यपि उनका महत्व धीरे धीरे घटता गया। पीछे वे लुप्त-प्राय होगईं। केवल थोड़े से चिन्ह शेष हैं, जो उनके उच्च आदर्श की स्मृति कराते हैं। अंगरेज़ों ने प्राचीन संस्थाओं की पुष्टि नहीं की, वरन् उनके स्थान पर नवीन संस्थाओं को स्थापना की जिन्होंने अभी तक देश में अच्छी जड़ नहीं पकड़ पाई है।

अस्तु, भारतवर्ष में वर्तमान स्थानीय संस्थाओं के निम्न-लिखित भेद हैं—

१—म्युनिसिपैलिटियां और कारपोरेशन, तथा नोटीफाइड एरिया,
२—स्थानीय और ज़िला बोर्ड, यूनियन कमेटियां
३—पंचायतें
४—पोर्ट ट्रस्ट
५—इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट

अब इनका क्रमशः वर्णन करते हैं।

म्युनिसिपैलिटियां और कारपोरेशन—सन् १८४२ ई० बंगाल में, और सन् १८५० ई० में समस्त भारतवर्ष में म्युनिसिपैलिटियां स्थापित करने के विचार से ऐक्ट बनाया गया। इनकी कुछ वास्तविक उन्नति सन् १८७० ई० में, लार्ड मेयो के समय में हुई। सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन ने इनके अधिकार बढ़ाए, तब से इनका विशेष प्रचार हुआ है।

प्रत्येक म्युनिसिपैलिटी की सीमा निश्चित की हुई है। जो लोग उसके अन्दर रहते और उसे टैक्स देते हैं, वे 'रेट पेयर' या कर-दाता कहाते हैं। इन कर-दाताओं में से जो निर्धारित वार्षिक कर देते हैं, अथवा जिनके पास जागीर हैं, वे "वोटर" या मतदाता कहाते हैं। इन्हें अपनी अपनी म्युनिसिपैलटी के लिए मेम्बर (म्युनिसिपिल कमिश्नर) चुनने का अधिकार है।

कलकत्ता, बंबई और मदरास शहर की म्युनिसिपैलिटियां, म्युनिसिपल कारपोरेशन या केवल "कारपोरेशन" कहलाती हैं। इनके मेम्बरों (कमिश्नरों) को कौंसिलर कहते हैं। अन्य म्युनिसिपैलिटियों से, इनका संगठन कुछ भिन्न प्रकार का, और आय-व्यय तथा कार्य-क्षेत्र अधिक होता है।

कार्य—म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों के मुख्य कार्य, कहीं-कहीं कुछ भेद होते हुए, साधारणतया ये हैं:—

(१) सर्व साधारण की सुविधा की व्यवस्था करना; सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत कराना, उन पर छिड़काव कराना, और वृक्ष लगवाना, डाक-बंगला या सराय आदि सार्वजनिक मकान बनवाना, कहीं आग लग जाय तो उसे बुझाना, अकाल, जल की बाढ़, या अन्य विपत्ति के समय जनता की सहायता करना।

(२) स्वास्थ्य-रक्षा; अस्पताल या औषधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी बहाने का प्रबंध कराना, और छूत की बीमारियों को बंद करने के लिए उचित उपाय काम में लाना; पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलाई गयी है, इसका निरीक्षण करना,

(३) शिक्षा, विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था करना; मेले और नुमायशें कराना।

(४) बिजली की रोशनी, ट्रामवे तथा छोटी रेलों के बनाने में सहायता देना।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य मुख्य साधन ये हैं:—

(१) चुंगी। अधिकतर उत्तर भारत, बंबई और मध्य प्रांत में; यह इन संस्थाओं की सीमा के अन्दर आने वाले माल तथा जानवरों पर लगती है। संयुक्त प्रांत में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ ज़िलों में म्युनिसिपैलिटियों का नाम ही 'चुंगी' पड़ गया है। (२) मकान और ज़मीन पर कर (विशेषतया आसाम, बिहार-उड़ीसा, बंबई, मध्य प्रांत और बंगाल में)। (३) व्यापार और पेशों पर कर, (विशेषतया मदरास, संयुक्त प्रांत, बंबई, मध्य प्रांत और बंगाल में)। (४) सड़कों और नदियों के पुलों पर कर (विशेषतया मदरास, बंबई और आसाम में)। (५) सवारियों, गाड़ी, बग्गी, साइकिल, मोटर और नाव पर कर। (६) पानी, रोशनी, नालियों की सफ़ाई, हाट-बाज़ार, क़साई ख़ाने, पायख़ाने आदि पर कर। (७) हैसियत, जायदाद और जानवरों पर कर। (८) यात्रियों पर कर, यह कर एक निर्धारित दूरी से अधिक के फ़ासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है। (९) म्युनिसिपल स्कूलों की फ़ीस। (१०) कांजी-हौस की फ़ीस। (११) सरकारी सहायता या ऋण।

कुछ प्रांतों में शिक्षा, अस्पतालों और पशु चिकित्सा के लिए म्युनिसिपैलिटियों को सरकारी सहायता मिलती है। जब किसी म्युनिसिपैलिटी को मैले पानी के बहाव के लिए नालियां बनानी होती हैं अथवा, जल-प्रबंध के लिए शहर में नल आदि लगाने होते हैं तो वह ऋण लेती है। यदि उचित समझा जाय, तो इस ख़र्च का कुछ भार सरकार कुछ शर्तों से अपने ऊपर ले लेती है।

संख्या और आय-व्यय—ब्रिटिश भारत में (जिसमें अब बर्मा नहीं है) सब म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों की संख्या ७२७ है। इन संस्थाओं की कुल आय और ऋण ३४ करोड़ रुपया है। इसमें २२ करोड़ रुपए से अधिक कलकत्ता, मदरास और बंबई का ही भाग है; अकेले बंबई की उक्त मद की रक़म १८ करोड़ है। इस प्रकार ७२४ म्युनिसिपैलिटियों की आय १२ करोड़ रुपए रह गई; और यह कितनी कम है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं। कई प्रांतों में म्युनिसिपैलिटियां अपना बजट या नया कर सरकार (या कमिश्नरों) से मंज़ूर कराती हैं।

जन संख्या और कर की मात्रा—कुल म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों की सीमा में २ करोड़ १२ लाख से अधिक, अर्थात् ब्रिटिश भारत की कुल जन संख्या के लगभग ८ फ़ी सदी से कुछ कम आदमी रहते हैं। ६५३ म्युनिसिपैलिटियों में पचास-पचास हज़ार से कम, और शेष ७४ में पचास-पचास हज़ार या अधिक आदमी हैं। म्युनिसिपैलिटयों की सीमा में, प्रत्येक आदमी पर म्युनिसिपल कर की औसत भिन्न-भिन्न है; उदाहरणवत् बंबई शहर में २३ रु०, बंबई प्रांत में (बंबई शहर छोड़कर) ५ रु० ५ आने, संयुक्त प्रांत में ३ रु० ४ आने, बिहार-उड़ीसा में २ रु० १ आना, मध्य प्रांत बरार में ३ रु०।

नोटीफ़ाइड एरिया—ये अधिकतर पंजाब और संयुक्त प्रांत में हैं। इन्हें म्युनिसिपैलिटियों के थोड़े-थोड़े से अधिकार होते हैं। ये उसी

क्षेत्र में होते हैं, जहां बाज़ार या क़स्बा अवश्य हो, और जिसकी जन-संख्या दस हज़ार से अधिक न हो। म्युनिसिपैलिटियों की अपेक्षा इनकी आय (एवं व्यय) कम रहती है। इनके अधिकांश सदस्य नामज़द होते हैं।

बोर्ड या यूनियन—देहातों में स्थानीय स्वराज्य का प्रारम्भ, म्युनिसिपैलिटियों के स्थापित होने के बहुत दिनों बाद हुआ। यहां स्वास्थ, सफ़ाई, प्रारम्भिक शिक्षा तथा औषधादि का प्रबंध रखने के उद्देश्य से 'ग्राम्य-बोर्ड' संगठित किए गए हैं। इसके तीन भेद हैं:—(१) 'लोकल' बोर्ड (एक बड़े गाँव में, या छोटे गाँवों के समूह में), (२) ताल्लुक़ा अथवा सब-डिविज़नल बोर्ड, और (३) ज़िला-बोर्ड[1]। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों में बोर्डों की व्यवस्था एक-सी नहीं है। मदरास और मध्य प्रांत में इनकी स्थापना अधिक हुई है। मदरास में प्रत्येक बड़े गाँव का अथवा कई गांवों को मिलाकर उन सब का, एक यूनियन, बना दिया गया है। बंबई में बोर्डों के केवल दो ही भेद हैं:—ज़िला-बोर्ड और ताल्लुक़-बोर्ड। बंगाल, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में ज़िला-बोर्ड स्थापित कर दिए गए हैं, और लोकल बोर्डों के बनाने का अधिकार प्रांतीय सरकारों को दे दिया गया है। आसाम में ज़िला-बोर्ड नहीं हैं, वहां केवल सब-डिवीज़नल-बोर्ड ही हैं।

बोर्डों की आय के साधन—बोर्डों की अधिकतर आय उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है। इसे सरकारी वार्षिक लगान या मालगुज़ारी के साथ ही प्रायः एक आना फ़ी रुपए के हिसाब से, वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिए सरकार कुछ रक़म, कुछ शर्तों से प्रदान कर देती है।

---

[1] ज़िला-बोर्ड को मध्य प्रांत में जिला-कौंसिल कहते हैं।

आय के अन्य स्रोत तालाब, घाट, सड़क पर के महसूल, पशु-चिकित्सा और स्कूलों की फ़ीस, कांजी हौस की आमदनी, मेले या नुमायशों पर कर, तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि-कर हैं। (आसाम प्रांत को छोड़ कर) अधीन ज़िला-बोर्डों का कोई स्वतन्त्र आय-स्रोत नहीं, उन्हें समय-समय पर ज़िला-बोर्डों से ही कुछ मिल जाता है।

बोर्डों का कर्त्तव्य पालन—बोर्डों को अपने ग्राम्य-क्षेत्र में वैसे सब कार्य करने होते हैं, जैसे म्युनिसिपैलिटियों को नगरों में करने होते हैं, उनके अतिरिक्त इन्हें कृषि और पशुओं की उन्नति के लिए भी विविध कार्य करने चाहिए। इस प्रकार उनका कर्त्तव्य कितना महान है, यह स्पष्ट ही है। इसे देखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि बोर्ड प्रायः बहुत ही कम कार्य कर रहे हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि उनकी आय बहुत थोड़ी—सालाना, लगभग १५ करोड़ ५२ लाख रुपया है, जब कि उनके क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या २३ करोड़ से अधिक है।

पंचायतें—पंचायतों की स्थापना और उन्नति का कार्य, अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार करने के लिए, प्रांतीय सरकारों पर छोड़ा गया है। भारत सरकार निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार, पंचायतें स्थापित करने के पक्ष में है। पंचायतों को दीवानी और फ़ौजदारी दोनों प्रकार के साधारण मामलों का फ़ैसला करने का अधिकार होता है। शिक्षा, स्वास्थ्य-सफ़ाई, और आवारा फिर कर नुक़सान पहुँचाने वाले मवेशियों के संबंध में भी उन्हें कुछ अधिकार दिए गए हैं। पंचायतों को समय-समय पर अन्य स्वराज्य-संस्थाओं तथा सरकार से कुछ रक़म मिलती है। इस के अतिरिक्त वे निर्धारित नियमों के अनुसार, अपने क्षेत्र के आदमियों पर कुछ कर लगा सकती हैं। यदि उन का कोई कर या जुर्माना वसूल न हो तो ज़िला-मैजिस्ट्रेट उसे वसूल करा देता है। पंचायतों को अपनी आय, ज़िला-मैजिस्ट्रेट की अनुमति से ही, शिक्षा, स्वास्थ्य,

सफ़ाई में, या कच्ची सड़कें बनवाने आदि के कार्य में ख़र्च करनी होती है।

पोर्ट-ट्रस्ट—बन्दरगाहों का स्थानीय प्रबंध करने वाली संस्थाएँ 'पोर्ट-ट्रस्ट' कहलाती हैं। ये घाटों पर मालगोदाम बनवाती हैं, और व्यापार के सुभीते के लिए नाव, और छोटे जहाज़ की सुव्यवस्था करती हैं। समुद्र-तट, नगर के निकटवर्ती समुद्र-भाग, या नदी पर इनका पूरा अधिकार रहता है। इनकी पुलिस अलग रहती है। इनके सभासद कमिश्नर या ट्रस्टी कहाते हैं। सभासदों में चेम्बर-आफ-कामर्स जैसी व्यापार-संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। कलकत्ते और करांची में म्युनिसिपैलिटियों के भी प्रतिनिधि इनमें लिए जाते हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त सब पोर्ट-ट्रस्टों में निर्वाचित सदस्यों की अपेक्षा नामज़द ही अधिक रहते हैं। अधिकांश सदस्य योरपियन होते हैं। म्युनिसिपैलिटियों की अपेक्षा पोर्ट-ट्रस्टों में सरकारी हस्तक्षेप अधिक है। माल-लदाई और उतराई, गोदाम के किराए, तथा जहाज़ों के कर से जो आमदनी होती है, वही इनकी आय है। इन्हें आवश्यक कार्यों के लिए क़र्ज़ लेने का अधिकार है। प्रधान पोर्ट-ट्रस्ट कलकत्ता, बंबई, करांची, मदरास और चटगांव में हैं। इनकी कुल आय ७ करोड़ ४१ लाख रुपए हैं। पोर्ट-ट्रस्टों पर लगभग ५० करोड़ रुपए से अधिक ऋण चढ़ा हुआ है।

इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट—बड़े-बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिए कभी कभी विशेष कार्य करने होते हैं, जैसे सड़कों को चौड़ी करना, घनी बस्तियों को हवादार बनाना, ग़रीबों और मज़दूरों के लिए मकानों की सुव्यवस्था करना आदि। इन कामों को म्युनिसिपैलिटियां नहीं कर सकतीं; उन्हें तो अपना रोज़मर्रा का काम ही बहुत है। अत: इनके वास्ते इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट बनाए जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, रंगून, इलाहाबाद, लखनऊ, और कानपूर आदि में हैं। इनके सदस्य सरकार, म्युनिसिपैलिटियों तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामज़द किए जाते हैं। ये अपने

अधिकार-गत भूमि आदि का किराया, तथा आवश्यकतानुसार ऋण या सहायता लेते हैं।

उपसंहार—स्थानीय स्वराज्य-संस्थाओं के विषय में यह स्पष्ट है कि अंगरेजों ने प्राचीन संस्थाओं की पुष्टि नहीं की; वरन् उनके स्थान पर नवीन संस्थाओं की स्थापना की है, तथा उन पर कमिश्नर आदि का नियंत्रण अंकुश विशेष रूप से रखा है। लार्ड रिपन के समय (सन् १८८४ ई०) से अब तक इन्हें स्थानीय पुलिस आदि संबंधी कुछ नवीन अधिकार नहीं दिए गए। पंचायतें तो नामज़द सदस्यों की ही संस्थाएँ हैं, प्रतिनिधियों की नहीं। इनकी आय के साधन भी बहुत कम हैं। इसलिए ये बहुत कम कार्य कर पाती हैं, और इसी से ये यथेष्ट फली-फूली नहीं। इनकी वृद्धि और विस्तार की आवश्यकता असंदिग्ध है।

बहुत सी म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों के संबंध में यह शिकायत है कि सड़कों की दशा ठीक नहीं है, प्राथमिक शिक्षा यथेष्ट रूप में नहीं दी जा रही है, या कन्याओं की शिक्षा में बहुत कम प्रगति हो रही है। इन दोषों का एक कारण तो यह है कि इन संस्थाओं की आय के साधन कम हैं, जिसके विषय में पहले लिखा जा चुका है। इसके अतिरिक्त, बात यह भी है कि इनमें अनेक आदमी कोई ख़ास कार्य-क्रम लेकर नहीं पहुँचते, व्यक्तिगत कीर्त्ति या यश आदि के लिए जाते हैं और दल-बन्दी करते हैं, जिससे सार्वजनिक हित की उपेक्षा होती है। मत-दाताओं को चाहिए कि मित्रता या रिश्तेदारी आदि का लिहाज़ छोड़कर, कार्य करने वाले सदस्य निर्वाचित किया करें, और समय-समय पर इस बात की जाँच करते रहें कि सदस्य अपने कर्त्तव्य का समुचित पालन करते हैं या नहीं। अस्तु, जनता एवं सरकार दोनों को इस बात का भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि भारतवर्ष की स्थानीय स्वराज्य-संस्थाएँ वास्तव में स्वराज्य-संस्थाएँ हों और अपने क्षेत्र के विविध कार्यों का योग्यतापूर्वक सम्पादन कर सकें।

सोलहवां परिच्छेद

सार्वजनिक ऋण

भारतवर्ष में, केंद्रीय सरकार को ऋण के सूद में प्रति वर्ष तेरह-चौदह करोड़ रुपए देना होता है। प्रांतीय सरकारों को भी प्रति वर्ष थोड़े बहुत परिमाण में इस मद में ख़र्च करना होता है। इसी से, राजस्व में ऋण के महत्व का अनुमान हो सकता है। इस परिच्छेद में ऋण के विषय में ही विचार करना है।

राज्य को ऋण की आवश्यकता—पहिले कह चुके हैं कि राज्य को विविध कार्यों के सम्पादन के लिए, उनके ख़र्च की व्यवस्था करनी होती है, कर लगाने पड़ते हैं। ज्यों-ज्यों खर्च बढ़ेगा, कर बढ़ाने होंगे। पहले तत्कालीन करों की मात्रा या संख्या बढ़ाकर अधिक आय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। परंतु जब ख़र्च इतना अधिक बढ़ जाता है कि उसको पूरा करने के लिए करों के बढ़ाने की गुंजायश न हो, अथवा जब कोई ख़र्च इस प्रकार का हो कि उसके लिए कर लगाना उचित न समझा जाय, तो राज्य को ऋण लेने की आवश्यकता होती है।

राज्य को ऋण लेने की सुविधा—सहकारी समितियों या व्यापारिक कम्पनियों की भाँति, राज्य की साख व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक होती है। उसे पूंजी, अधिक मात्रा में और कम सूद पर मिल सकती है। यदि ऋण बहुत ही अधिक लिया जाय तो यह सुविधा कम हो जायगी। जब किसी देश की माली हालत अच्छी न हो, हिसाब साफ़ न रहता हो,

या अशांति और युद्ध की अवस्था हो, तो भी ऋण लेने की सुविधा कम हो जाती है। पराधीन देश की सरकार शासक-देश से, अथवा उसकी साख पर ऋण ले सकती है।

विगत कई वर्षों में भारत सरकार का ख़र्च उसकी आय से अधिक हुआ, नए-नए कर लगाने पर भी उसे घाटा रहा। इस से ऋण बढ़ता गया। तथापि भारत सरकार को ब्रिटिश सरकार की साख पर ऋण लेने की सुविधा बनी हुई है। परंतु सुविधा होने पर भी राज्य को बिना सोचे-समझे ऋण नहीं लेते रहना चाहिए।

किन-किन दशाओं में ऋण लिया जाता है?—साधारणतया तीन दशाएं ऐसी हैं जिनमें धन प्राप्त करने के लिए, राज्य ऋण लिया करता है:—

(१) जब राज्य नहर या पुल आदि ऐसा सार्वजनिक निर्माण-कार्य करे जिनसे महसूल आदि की आय हो, अथवा जब वह उद्योग-धंधों की वृद्धि तथा व्यापार की उन्नति के ऐसे उत्पादक कार्यों का संचालन करे, जिनसे देश-वासियों की धन-वृद्धि हो, और कालांतर में राज्य की, करों से प्राप्त होने वाली आय स्वयं बढ़ जाय। ऐसी दशा में आवश्यक धन, कर-वृद्धि से प्राप्त करना बुद्धिमानी नहीं है। ऋण लेकर इसके लिए व्यय करना चाहिए। इस व्यय से भविष्य में चिरकाल तक आय होती है, अतः इस व्यय को उसी कार्य की आय से क्रमशः कई वर्षों में वसूल करना श्रेयष्कर है; हां, राज्य को प्राप्त होने वाली आय का बड़ी सावधानी से अनुमान करना चाहिए।

जब अकाल आदि आर्थिक दुर्घटना के कारण, कुछ समय के लिए राष्ट्र की आय घट जाय तथा राज्य का ख़र्च चलाना कठिन

हो जाय, तो ऋण लेना उचित नहीं, क्योंकि इस से आर्थिक दुर्घटना न होने की दशा में भी ऋण लेने की आदत पड़ने की आशंका है। अतः आय की उपर्युक्त कमी को करों से ही पूरा करना ठीक है। पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में अकाल होने पर सरकार ऋण नहीं लेती, वरन् इस कार्य के लिए अलग रक्खे हुए रुपयों का ही उपयोग करती है।

(२) जब राज्य पर किसी दूसरे राज्य के आक्रमण आदि किसी ऐसे आकस्मिक व्यय का भार आ पड़े, जिस की बार-बार पुनरावृत्ति की आशा न हो, तो ऐसी दशा में भी ऋण लेना ही उचित होगा, क्योंकि कर लगाने और फिर जल्दी उसे हटाने से राजस्व में बड़ी गड़बड़ मचती है, और करों की समानता घटती है। यद्यपि इस ऋण से भविष्य में कोई आय नहीं होती, तथापि राज्य की स्वतंत्रता के लिए यह आवश्यक है।

दूसरों को परतंत्र करने वाले युद्धों के लिए अथवा अन्य अनुत्पादक कार्यों के लिए, अपने सिर पर ऋण का भार चढ़ाना कदापि उचित नहीं।

देशी-विदेशी ऋण—ऋण यथा संभव स्वदेश में ही लिया जाना चाहिए। विदेश में ऋण लेने से सूद का रुपया देश से बाहर जाता है इस के अतिरिक्त विदेशी ऋण-दाता या साहूकार अपने व्यापारि और राजनैतिक अधिकारों की वृद्धि का भी लक्ष्य रखते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों किसी देश पर ऋण का भार बढ़ता जाता है, वह आर्थिक और राजनैतिक, दोनों दृष्टियों से अधिकाधिक पराधीन होता जाता है। अस्तु, विदेश से ऋण लेने में साव-धानी रखने की बड़ी आवश्यकता है। परंतु भारत सरकार को इस

बात की स्वतंत्रता नहीं है कि जहां कहीं से ऋण अच्छी शर्तों पर, तथा कम सूद में मिले, वहां से ही ले सके. उसे तो ब्रिटिश सरकार के द्वारा इंगलैण्ड में ही लेना पड़ता है और वह न केवल उत्पादक कार्यों के लिए ही ऋण लेती है वरन् अनुत्पादक कार्यों के लिए भी वहाँ से ऋण लेती रहती है, जिससे यहां के उद्योग धंधों की वृद्धि नहीं होती, और जनता को अधिक कर-भार सहना पड़ता है, तथा उसकी आर्थिक दशा ख़राब होती रहती है। भारत सरकार के ऋण लेने पर यहाँ के लोक-प्रतिनिधियों का कोई नियंत्रण नहीं है, भारतीय व्यवस्थापक-मंडल से इसकी स्वीकृत ली जाया करे तो इस पर कुछ रोक-थाम हो।

राष्ट्रीय ऋण का भार—किसी राज्य के निवासियों पर राष्ट्रीय ऋण का भार कितना है, इसका ठीक अनुमान करना बहुत कठिन है। विविध उपायों का प्रयोग करके देखा जाय और यदि सब का फल एक ही प्रकार का हो तो कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है। उपर्युक्त उपायों में से प्रथम ऋण की कुल मात्रा का विचार है; परंतु अकेले इसी के आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भी देखना होगा कि यह ऋण कितनी जन-संख्या पर है, और यह जनता कहां तक धनवान् या निर्धन है। यह सर्वथा संभव है कि धनी जनता पर प्रति व्यक्ति कर का परिमाण अधिक होने पर भी, उस पर कम कर वाली जनता की अपेक्षा कर-भार कम ही हो। उदाहरणवत् भारतवर्ष में प्रति व्यक्ति कर की मात्रा इंगलैंड की अपेक्षा कम होने पर भी, यहाँ कर-भार कम नहीं कहा जा सकता। ऋण-पत्रों के मूल्य से भी कर-भार का ठीक अनुमान नहीं हो सकता; कारण, किसी समय के ऋण पत्रों के विक्रय का बाज़ार-दर केवल एक परिमित संख्या के ऋण पत्रों के तत्कालीन मूल्य को ही सूचित करता है। इस में कुछ स्थिरता नहीं होती।

भिन्न-भिन्न राज्यों की ब्याज-दर की तुलना करने से भी कर-भार

का ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। हम पहिले बता आए हैं कि भारत सरकार को ब्रिटिश सरकार की साख पर ऋण कम सूद पर मिलता है; अब, यदि जर्मनी या फ्रांस को अपने ऋण पर ऊँची दर से सूद देना पड़ता हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष पर राष्ट्रीय ऋण का भार कम है।

राष्ट्रीय ऋण के परिमाण की (क) राष्ट्रीय आय से या (ख) संपूर्ण जातीय धन से, तुलना करके भी ऋण-भार का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया जाता है, परंतु राष्ट्रीय आय या संपूर्ण जातीय धन का ठीक हिसाब लगाना भी सहज नहीं है; और, विशेषतया जब कि देश में बहुत से विदेशियों को काफ़ी आय हो, तथा राष्ट्रीय संपत्ति में उनका खासा अधिकार हो तो यह समस्या और भी कठिन हो जाती है।

अस्तु, जैसा पहले कहा गया है, उपर्युक्त विविध उपायों द्वारा की हुई जांच का फल जब एक ही प्रकार का हो, तभी किसी राज्य के ऋण-भार के संबंध में कुछ ठीक राय दी जा सकती है।

भारत का सार्वजनिक ऋण—भारतवर्ष के सार्वजनिक ऋण का श्रीगणेश ईस्ट इंडिया कंपनी ने किया और उसी ने इस को बहुत कुछ बढ़ाया। कंपनी के अंत होने के बाद ब्रिटिश पार्लियामैंट ने उसको सुरक्षित कर दिया, तब से इस की ख़ूब वृद्धि हुई है।

इस ऋण का यह कारण है, कि राज्य का व्यय बढ़ गया और नए-नए करों के लगाने और बढ़ाने पर भी उस का पूरा नहीं पड़ा। पुनः एशिया के कई स्थानों में, और अफ्रीका के कुछ स्थानों में भी, अंगरेज़ों का व्यापारिक और राजनैतिक आधिपत्य स्थिर करने में भी प्रायः भारतवर्ष

के ही द्रव्य और सेना का उपयोग हुआ है। इस बात की पुष्टि के लिए हम नीचे कुछ घटनाएँ उद्धृत करते हैं।

भारत पर कंपनी के युद्धों का भार—ईस्ट इंडिया कंपनी इंगलैंड के राजा की प्रतिनिधि थी। उस ने इंगलैंड के शत्रु फ्रांस से, और फ्रांस से सहायता-प्राप्त भारतीय नरेशों से कई युद्ध किए। वह इन का भार न उठा सकी, ऋण, ग्रस्त हो गई। सन् १७६५ ई० में बंगाल की दीवानी प्राप्त कर लेने पर उस ने अपने ऋण का भार इस प्रांत से होनेवाली आमदनी पर डाल दिया। वास्तव में यहाँ से ही भारत का सार्वजनिक ऋण आरंभ होता है।

सिंहल द्वीप; सिंगापुर, हांकांग, अदन, और रंगून सभी प्रदेश इंगलैंड ने भारत की सेना और धन के द्वारा जीते हैं। अफ़ग़ानिस्तान, चीन, बर्मा, और ईरान से अंगरेज़ों ने युद्ध किए, उन में रुपयों की ज़रूरत हुई। इन सब युद्धों में भी भारत के ही द्रव्य और सेना का उपयोग किया गया। इस प्रकार भारत पर ऋण-भार बढ़ता गया।

कंपनी के कारोबार का भार—कंपनी ने अपना जो कारोबार सेंट हलीना, वेन कूलन, मलाक्का, प्रिंस-आफ़ वेल्स द्वीप, और कानटन में चला रक्खा था, उस का सब व्यय-भार, और अंगरेज़ों ने जो आक्रमण उत्तमाशा अंतरीप, मनिल्ला, मारिशश, तथा मलाका टापुओं पर किए थे, उन सब का ख़र्च भी भारत पर पड़ा।

ईस्ट इंडिया कंपनी को सन् १८१३ ई० तक भारतवर्ष में व्यापारिक अधिकारों के अतिरिक्त राजनैतिक सत्ता प्राप्त रही। उस ने अपने इन दो खातों का हिसाब अलग न रख कर अपने विविध प्रकार के व्यापारिक और युद्ध संबंधी व्यय के भार को भी शासन संबंधी ही दर्शा कर, भारतवर्ष के ऊपर रख दिया।

कंपनी के पुरस्कार का भार—सन् १८१३ से कंपनी को

केवल चीन में व्यापार करने का अधिकार रह गया था; सन् १८३३ में वह भी हटा दिया गया। अब से कंपनी भारतवर्ष की शासक समुदाय मात्र रही। उसकी संपत्ति भारत सम्राट् को दी गयी। उसके ऋण और दायित्व का भार भारत सरकार को सौंपा गया। निश्चय हुआ कि इंगलैंड की पूंजी पर १०॥ प्रति सैकड़ा (कुल लगभग ६३ लाख रुपया) प्रति वर्ष दिया जावे। सन् १८७३ के बाद पार्लियामेंट चाहे तो पूंजी के हिस्सों के प्रति एक हज़ार रुपए के बदले दो हज़ार रुपए (अर्थात् कुल १२ करोड़ रुपए) एक साथ देकर मुनाफ़े से छुटकारा पा सके।

इस प्रकार भारतवर्ष ४० वर्ष तक ६३ लाख रुपया प्रति वर्ष वार्षिक मुनाफ़े के नाम से देता रहा। सन् १८७३ में ऋण चुकाने वाले फंड में १२ करोड़ रुपया जमा नहीं हो सका, जैसी की पूर्व में आशा की गई थी। कमी को पूरा करने के लिए भारत-मंत्री ने भारत के जिम्मे ४॥ करोड़ रुपया, सार्वजनिक ऋण के नाम से और कर दिया।

सन् १८३३ में जब कंपनी के व्यापारिक अधिकारों का अन्त किया गया तो उचित तो यही था कि भारतवर्ष को उक्त ऋण के बोझ से मुक्त करने का प्रयत्न किया जाता, परंतु यहाँ उसे स्थायी रूप से उस ऋण के लिए ज़िम्मेदार कर दिया और कुछ अंशों में उस ऋण को बढ़ा भी दिया गया।

यहाँ के शासन-व्यय के निमित्त बहुत सा धन प्रतिवर्ष इंगलैंड जाता है। इसे 'होम चार्जेज़' या विलायती ख़र्च कहते हैं[1] इस के अंतर्गत सूद में यहाँ से प्रतिवर्ष एक बड़ी रक़म जाती है। जिस पूंजी पर वह सूद दिया जाता है वह सब उत्पादक कार्यों में ही लगी

---

[1] इस मद में निम्न लिखित विषयों के ख़र्च का समावेश है—आय प्राप्ति का व्यय, रेल, नहर, डाक और तार, ऋण का सूद, सिविल शासन, मुद्रा, टकसाल और विनिमय, मुल्की मकानात, सेना आदि।

हुई नहीं है; जो उत्पादक कार्यों में है; उसका भी पूर्ण लाभ इस देश को नहीं मिलता। उदाहरणवत् रेल आदि का बहुत-सा सामान यहाँ तैयार कराया जा सकता है। रेलों में, आरंभ में बेहद ख़र्च हुआ और कई वर्ष अपार हानि उठानी पड़ी। इन सब बातों से वहाँ खर्च का भार बढ़ता जाता है और सार्वजनिक ऋण की वृद्धि में सहायता मिलती है।

सिपाही विद्रोह का भार—सन् १८५७ ई० में भारत में सिपाही विद्रोह हुआ। उसके दमन करने में जो व्यय हुआ, उसके कारण अगले वर्ष यहाँ ऋण की मात्रा और बढ़ गई।[1]

पार्लियामेंट का समय—यह बड़ा भारी ऋण चाहे वह कम्पनी की, एशिया, योरप, या अफ्रीका महाद्वीप में लड़ी हुई लड़ाइयों के कारण बढ़ा हो, चाहे 'होम चार्जेज़' के नाम से दी जाने वाली वार्षिक रक़म के कारण बढ़ा हो, अथवा सन् १८५७ ई० का सिपाही-विद्रोह ही इसकी अपार वृद्धि का हेतु हो, सन् १८५८ की नई सरकार को उसी समय हस्तांतरित किया गया जब भारतवर्ष का भाग्य-चक्र कम्पनी के हाथ से निकल कर साम्राज्ञी के हाथों में पहुंचा। सन् १८५८ ई० में सन् १८३३ ई० की बात दोहराई गई। उक्त वर्ष में 'भारत की सुव्यवस्था और सुशासन के लिए,' पास किए हुए एक्ट में लिखा है कि "ईस्ट इंडिया

---

[1] महाशय जान ब्राइट ने कहा था "मेरा विचार है कि सिपाही-विद्रोह दमन करने में जो ४० करोड़ रुपया व्यय हुआ है, उसे भारत-वासियों के सिर मढ़ना उन के ऊपर असह्य बोझ होगा।.................. यदि प्रत्येक मनुष्य के साथ न्याय किया जाय तो इस में संदेह नहीं कि ये ४० करोड़ रुपए इस देश (इंगलैंड) की प्रजा से कर द्वारा वसूल होने चाहिएं।"

कंपनी के मूलधन पर मुनाफ़ा और तमाम तमस्सुक, बौंड और ग्रेट ब्रिटेन के अन्य सब ऋण, तथा कम्पनी के और भी सब प्रकार के देय ऋण, भारत के राज्यकर की आय से दिए जायँगे और दिए जाने योग्य हैं।"

क्रमशः भारत का शासन-व्यय बढ़ता गया। राजस्व-सदस्य ने आय का अनुमान कम और व्यय का अनुमान बहुत अधिक करके करों की दर ऊँची रक्खी। इस से बीसवीं सदी के प्रथम दस वर्षों में सरकारी बचत का औसत चार करोड़ रुपए रहा। सरकार ने फिर भी करों को कम करने का विचार न किया, और न बचत के रुपए से देश में शिक्षा और स्वास्थ्य का विशेष प्रबंध किया। उस ने प्रायः बचत के रुपए को अनुत्पादक ऋण कम करने के काम में लगाया। महायुद्ध के समय में भारत सरकार ने ब्रिटिश-सरकार को डेढ़-सौ करोड़ रुपया 'दान' दिया। इस रक़म से भारत सरकार से अनुत्पादक ऋण में इतनी वृद्धि और हो गई।

ऋण की रक़म—भारत-सरकार का कुल सरकारी ऋण ३१ मार्च १९३५ ई० को १२३६ करोड़ रुपए था, इस में से ७२२ करोड़ भारतवर्ष में और शेष इंगलैंड में लिया हुआ था। कुल ऋण में से १०३३ करोड़ रुपए का ऋण ऐसा है, जिस के बदले में किसी न किसी प्रकार की सम्पत्ति विद्यमान है। ७५७ करोड़ रुपए तो रेलों में ही लगे हुए हैं, शेष में से कुछ रक़म व्यवसायिक विभागों में लगी हुई है, कुछ प्रांतों तथा देशी राज्यों को उधार दी हुई है और कुछ नक़द मौजूद है। ऋण की जो रक़म

रेलों में लगी हुई है उसका सूद रेलों के व्यय की की मद में दिखाया जाता है। ऋण के २०३ करोड़ रुपए ऐसे हैं जिनके बदले में कोई भी सम्पत्ति विद्यमान नहीं है।

सूद का हिसाब—सन् १९३४-३५ के आय व्यय अनुमान में केंद्रीय व्यय में सार्वजनिक ऋण के सूद की रक़म १३ करोड़ ३४ लाख रुपए दिखाई गई है। विदित हो कि उपर्युक्त रक़म दिखाते हुए कुल सूद की रक़म में से रेल, आबपाशी, डाक और तार की मद्दों के, तथा प्रांतीय सरकारों से लिए जाने वाले सूद की रक़म घटा दी गई है। अन्यथा उस वर्ष का कुल सूद कहीं अधिक बैठता।

अधिकारियों के बहुत अधिक ख़र्च के कारण, नए-नए करों के लगते हुए भी देश पर, सूद पर लिए हुए ऋण का भार बढ़ता रहा है।

ऋण दूर किस प्रकार हो?—यदि भारतीय जनता के मत का विचार करके सरकार अपना ख़र्च परिमित रखे तो ऋण बढ़ाने की आवश्यकता ही न हो। परंतु ऋण की वर्तमान मात्रा भी तो इतनी है कि उसके सूद के कारण देश की आर्थिक उन्नति में बड़ी बाधा उपस्थित हो रही है। इसे निम्नलिखित प्रकार से दूर किया जासकता है:—

१—इंगलैंड भारत से वह ऋण वापस लेना छोड़ दे जो उसके (इंगलैंड के) हित के लिए लिया गया है। धन-संपन्न इंगलैंड के लिए उसे छोड़ देना कुछ कठिन नहीं है।

२—यदि यह न हो तो इंगलैंड भारत सरकार को ही ऋण-मुक्त होने के लिए यथेष्ट उपाय काम में लाने में सहायक हो।

(क) जिन आदमियों की ज़मीन आदि की आमदनी पर आय-कर नहीं लगता, उन पर मालगुज़ारी के अतिरिक्त अन्य लोगों की तरह

आय कर भी लगाया जावे।[1]

(ख) सब ऋण के सूद की दर बहुत परिमित की जाय।

(ग) जो लोग भारत सरकार से सूद की आमदनी लेते हैं, उनकी आमदनी पर भारत सरकार टैक्स लगाए, चाहे वे भारतवर्ष से बाहर भी रहते हों। इंगलैंड ऐसा करता है, उसे भारतवर्ष को भी ऐसा करने देने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

यह सब मिला कर भारत सरकार को प्रति वर्ष काफ़ी आय या बचत हो सकती है। यह केवल ऋण चुकाने में ही काम में लाई जाय। आशा है, सरकारी अधिकारी इस विषय का यथेष्ट विचार करके देश को ऋण के भयंकर बोझ से मुक्त करने का विचार करेंगे, जिस से इस की आर्थिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो। शुभम्।

[1] मालगुज़ारी देने वालों में कुछ आदमी सरकार को उपज के हिसाब से बहुत अधिक मालगुज़ारी देते हैं; कुछ कम। उन पर आय-कर लगाने में इस बात का लिहाज़ रखना होगा।

परिशिष्ट १

सरकारी आय व्यय

आगे ब्रिटिश भारत में होने वाले सरकारी आय और व्यय के अंक दिए जाते हैं। स्मरण रहे कि:—

(१) हिसाब को संक्षिप्त करने के विचार से हम ने सब प्रांतों का एक-एक मद का ख़र्च, तथा एक-एक मद की आय इकट्ठी जोड़ कर दी है। चीफ़ कमिश्नरों के प्रांतों की (प्रांतीय विषयों की) आय तथा व्यय केंद्रीय सरकार के हिसाब में शामिल किया गया है, कारण, इसका संबंध केंद्रीय सरकार से ही रहता है।

(२) व्यय की मदों में, कर वसूल करने के ख़र्च में आयात-निर्यात-कर, आय-कर, मालगुज़ारी, स्टाम्प, रजिस्टरी, अफ़ीम, नमक, और आबकारी आदि विभागों के ख़र्च के अतिरिक्त अफ़ीम और नमक तैयार करने का ख़र्च भी सम्मिलित है।

सरकारी व्यय (लाख रुपया में)

सन् १९३४—३५ ई० का अनुमान

	मद	केंद्रीय सरकार	प्रांतीय सरकार
रक्षा	(१) सेना	४९, ५८	...
शांति-सुव्यवस्था	(२) कर वसूल करने का खर्च	४, ०१	६, ०४
	(३) पेन्शन	३, ०८	२, ४१
	(४) शासन		११, ०७
	(५) न्याय, पुलिस और जेल		१९, ०८
जन-हितकारी कार्य	(६) शिक्षा	९, ५९	११, ६०
	(७) स्वास्थ्य और चिकित्सा		६, ११
	(८) कृषि और उद्योग		२, ९९
	(९) सिविल निर्माण कार्य	२, ०२	५, ०९
	(१०) मुद्रा, टकसाल, विनिमय	६६	...
	(११) अन्य विभाग	...	७२
व्यवसायिक कार्य	(१२) रेल	३२, ५८	...
	(१३) डाक और तार	८४	...
	(१४) जंगल	...	२, ५५
	(१५) आबपाशी	...	५, ७३
	(१६) विविध	१, २५	२, ००
ऋण	(१७) ऋण का सूद	१३, ३४	४, ०८
	योग	११६, ९५	७९, ४७

सरकारी आय (लाख रुपयों में)

सन १९३४—३५ ई० का अनुमान

	मद	केंद्रीय-सरकार	प्रांतीय-सरकार
कर, प्रत्यक्ष	(१) आय-कर	१७, २५	...
	(२) मालगुज़ारी	...	३३, ८८
कर, परोक्ष	(३) आयात निर्यात कर	४७, ७६	...
	(४) नमक	८, ७३	...
	(५) अफ़ीम	६५	...
	(६) आबकारी	...	१४, ४७
	(७) स्टाम्प	...	११, ६६
	(८) रजिस्टरी	...	१, ११
	(९) अन्य कर	१, ८२	४१
फ़ीस	(१०) न्याय, पुलिस, जेल	७८	१, ७०
	(११) शिक्षा, स्वास्थ्यादि		३, ३१
	(१२) सिविल निर्माण कार्य	२४	१, ५४
	(१३) मुद्रा टकसाल विनिमय	१, २७	...
व्यवसायिक आय	(१४) रेल	३२, ५८	...
	(१५) डाक, तार	७०	...
	(१६) जंगल	...	३, ०५
	(१७) आबपाशी	...	६, ८७
अन्य आय	(१८) सैनिक आय	५, २०	...
	(१९) सूद की आय	१, ८६	२, ११
	(२०) विविध	५७	८६
	योग	१, १९, ११	८१, ३३

परिशिष्ट—२

पारिभाषिक शब्द

Accounts	हिसाब
Act	क़ानून
Administration	शासन
Air Forces	वायु-सेना
Allowance	भत्ता, अलाउंस
Amendment	संशोधन
Army	सेना
Assembly, Indian Legislative—	भारतीय व्यवस्थापक सभा
Audit	हिसाब की जांच
Auditor	हिसाब-परीक्षक, लेखा परीक्षक
Authority	अधिकार, अधिकारी,
Autonomy, Provincial	प्रांतीय स्वराज्य
Auxilliary Forces	सहायक सेना
Bill	कानून का मसविदा
Broad-casting	ध्वनि-विस्तार

Budget	बजट, आय-व्यय-अनुमान-पत्र
Budget-estimate	आय-व्यय-अनुमान-पत्र
Bye-law	उप-नियम
Cabinet	मंत्रिमंडल
Capital Expenditure	पूंजी से होने वाला ख़र्च
Cattle-pond	मवेशीख़ाना
Census	मनुष्य-गणना
Central Government	केन्द्रीय सरकार
Central Provinces	मध्यप्रान्त
Central Subject	केन्द्रीय विषय
Certify	तस्दीक करना, प्रमाणपत्र देना
Cess	महसूल
Chairman	सभापति, चेयरमैन
Chief Commissioner	चीफ़ कमिश्नर
Circulation	चलन, प्रचार
Citizen	नागरिक
Civil	दीवानी, मुल्की
Classification	वर्गीकरण
Coinage	मुद्रा-ढलाई
Collector	कलेक्टर
Colony	उपनिवेश
Commerce	वाणिज्य
Commission, Enquiry	जाँच, कमीशन
Commissioner	कमिश्नर
Conscription	अनिवार्य सैनिक सेवा
Constituency	निर्वाचक संघ, निर्वाचन क्षेत्र

Constitution	विधान, शासन-पद्धति
Constitutional	वैध
Consumption	उपभोग
Co-operative society	सहकारी समिति
Copy-right	मुद्रणाधिकार
Council, Executive	प्रबन्धकारिणी सभा, कार्यकारिणी सभा
Council, India	इंडिया कौंसिल, भारत-मंत्री की सभा
Council, Legislative	व्यवस्थापक परिषद् ।
Council of State	राज्य परिषद्
Court	अदालत, न्यायालय
Credit	साख
Criminal Investigation Dept.	ख़ुफ़िया पुलिस
Crown	सम्राट
Currency	मुद्रा
Customs	आयात निर्यात कर
Death Duty	मृत्यु-कर
Debt, Public	सार्वजनिक ऋण, सरकारी ऋण
Defence	रक्षा
Department	विभाग
Direct Demands on Revenue	कर वसूल करने का ख़र्च
Direct Election	प्रत्यक्ष निर्वाचन
Direct Tax	प्रत्यक्ष कर
District Administration	ज़िले का शासन
District Board	ज़िला-बोर्ड
District Council	ज़िला कौंसिल

Drainage works	नालियां बनाने का काम
Dyarchy	द्वैध शासन पद्धति।
Ecclesiastical Dept.	धर्म संबंधी विभाग, ईसाई मत विभाग
Economic	आर्थिक
Election	निर्वाचन, चुनाव
Exchange	विनिमय
Excise Duties	आबकारी कर। देशी माल पर कर
Executive Council	प्रबंधकारिणी सभा
Expenditure, Public—	सरकारी ख़र्च
Export	निर्यात
Factory	कारख़ाना
Famine-relief	दुर्भिक्ष निवारण, अकाल निवारण
Federal Assembly	संघीय व्यवस्थापक सभा
Federal Court	संघ न्यायालय
Federal Govt.	संघ सरकार
Federal Legislature	संघीय व्यवस्थापक मंडल
Federation	संघ
Fees	फ़ीस, शुल्क
Finance	राजस्व
Finance Member	अर्थ सदस्य
Financial	राजस्व संबंधी आर्थिक
Fiscal policy	अर्थनीति
Foreign Depts.	विदेश, विभाग
Fund, Reserve	बचत कोष, रिज़र्व फंड
Franchise	पदाधिकार
Free Trade	मुक्तद्वार व्यापार, अबाध व्यापार

Gold Standard Reserve	मुद्रा ढलाई लाभ कोष, स्वर्ण-मान कोष
Government of India	भारत सरकार
Governor General in Council	कौंसिल युक्त गर्वनर-जनरल, सपरिषद् गवर्नर-जनरल ;
Governor in Council	कौंसिल युक्त गवर्नर, सपरिषद् गवर्नर
Gross Revenue	कुल आय
Headman	मुखिया
Head-quarter	सदर मुक़ाम
Heads of Depts.	विभागों के अध्यक्ष
Head of Income	आय की मदें
High Commissioner	हाई कमिश्नर
His Majesty's Govt	सम्राट की सरकार, ब्रिटिश सरकार ।
Home Charges	(भारत का) इंगलेंड में होनेवाला ख़र्च होम चार्जेस ।
Home Dept.	स्वदेश विभाग
Home Government	ब्रिटिश सरकार
Home member	स्वदेश मंत्री, गृह-सचिव ।
I. C. S. (Indian Civil Service)	आई० सी० एस०, भारतीय मुल्की नौकरी, इंडियन सिविल सर्विस
Imperial	साम्राज्य संबंधी, शाही
Imperial Preference	साम्राज्यान्तर्गत रियायत
Import	आयात
Improvement Trust	इम्प्रूमेंट ट्रस्ट, नगरोन्नतिकारिणी सभा
Income-tare	आय कर
India Council	इंडिया कौंसिल, भारत मंत्री की सभा

Indian Administration	भारतीय शासन
Indian Civil Service	इंडियन सिविल सर्विस, भारतीय मुल्की नौकरी
Indianisation	भारतीय करण
Indian Legislative Assembly	भारतीय व्यवस्थापक सभा
Indian Penal Code	भारतीय दंड विधान, ताज़ीरात हिन्द
India Office	इंडिया आफिस, भारतमंत्री का कार्यालय
Indirect Tax	परोक्ष कर
Industry	उद्योग धंधा
Insurance	बीमा
Irrigation	सिंचाई, आबपाशी
Joint Stock Company	मिश्रित पूँजी की कंपनी
Kine-house	काँजी हौस
Labour	मज़दूर, मज़दूरी, श्रम
Labour Party	मज़दूर दल
Land holder	काश्तकार
Land lord	ज़मींदार
Land revenue	मालगुज़ारी
Law	क़ानून
Lawful	जायज़, न्याय
League of Nations	राष्ट्र-संघ
Legislation	व्यवस्था
Legislative Council	व्यवस्थापक परिषद्
Legislature	व्यवस्थापक मंडल

License	लैसेंस, सरकारी अनुमति
Local Board	लोकल बोर्ड, स्थानीय बोर्ड
Local Government	प्रांतीय सरकार
Local Self-Goverment	स्थानीय स्वराज्य
Luxuries	विलासिता की वस्तुएँ
Majority	बहुमत
Market	बाज़ार
Member	सदस्य, मेंबर
Minister, Prime	प्रधान मंत्री
Mint	टकसाल
M. L. A. (Member Legislative Assembly)	एम० एल० ए० (भारतीय व्यवस्थापक सभा का सदस्य
Monarchy	राजतंत्र
Money	द्रव्य, रुपया-पैसा
Monoply	एकाधिकार
Municipality	म्युनिसिपैलिटी
Nationalisatian	राष्ट्रीकरण
Nation-Building	राष्ट्रनिर्म्माण
Navy	जलसेना
Necessaries of Existance	जीवन रक्षक पदार्थ
Net Revenue	विशुद्ध आय
Octroy	चुँगी
Paper Currency	काग़ज़ी मुद्रा
Parliament	पार्लियामैंट
Party	दल
Permanent Settlement	स्थायी बंदोबस्त